डा॰ लक्ष्मीनारायण लाल

चंद्रमा

डा॰ लक्ष्मीनारायण लाल

किताबघर
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

ISBN—81-7016-029-4

© लेखक

प्रकाशक
किताबघर
शीलतारा हाउस, 24/4866, अंसारी रोड़
दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

प्रथम संस्करण
1989

मूल्य
बीस रुपये

मुद्रक
चोपड़ा प्रिंटर्स, मोहन पार्क
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

CHANDRMA (Hindi Play)
by Dr. Lakshmi Narain Lal
Price : Rs. 20.00

रंगमंच

आज जब अपने रंगमंच नहीं, रंगभूमि का तनिक बोध हुआ तो अब नाटक लिखते समय बड़ी पीड़ा से गुजरना पड़ता है। जिस मंच पर अपने-आपको लिए जा रहा था, अनुभव हुआ कि यह तो नकली है। असली तो अपनी ही 'वस्तु' होती है। वह है रंगभूमि—अपनी 'भूमि' का 'रंग'। और वह कितना बेघर है—यह दर्द टीसता रहता है। उसी पीड़ा ने मुझे दिखाया है कि पश्चिम की आधुनिकता ने हमारी रंगभूमि को कितना उखाड़ा है और बेघर किया है। और बेघर किया है आधुनिक रंगमंच के नाम पर। पश्चिम का आधुनिक रंगमंच मेरी समझ से पश्चिमी संस्कृति का सूर्यास्त काल है। जो उसके ह्रास के चरम बिन्दु हैं, उनको महिमामंडित कर हम आधुनिक काल कहते हैं और अपने भारत देश, भूमि की अपेक्षा कर रहे हैं। जहां इस कदर उखड़े और बेघर होने के बावजूद अभी कुछ जीवन बचा हुआ है, कुछ परंपरा बची हुई है। उखड़े होने का यही सबूत है कि हम अपने बचे हुए जीवन और परंपरा को अनदेखा कर रहे हैं।

आदमी बेघर, बेभूमि तभी होता है जब वह अपनी संस्कृति से उखाड़ा जाता है; जब वह अपने जीवन-स्रोत से कटता है। आधुनिकता ने इसी धरातल पर हमें उखाड़ा है। उन्नीस सौ सैंतालीस तक वह प्रक्रिया पूरी कर उन्होंने हमें स्वतन्त्र नहीं आज़ाद करके यह कहा कि भारतवर्ष में अपना कुछ रहा नहीं। अपना कुछ रह सकने की संभावना भी नहीं रही, इसलिए हमसे सीखो। हम से लो। और नाटक-रंगमंच के जितने प्रकार

संभव हैं, जितनी विषयवस्तु चाहिए, हमसे लो। और नये-नये नाटक लिखो। भूल जाओ अपनी नाट्य और रंग परंपराओं को। हमसे लो। हमारा काम करो।

जब तक अपनी संस्कृति थी, हमसे ऐसी बात कोई नहीं कह सकता था। जब तक अपनी संस्कृति थी तब तक सबका जीवन, कला, धर्म, साहित्य, पूरा विराट जीवन हमारे भीतर परिव्याप्त था। हमें अपनी कला, अपनी प्रतिभा को समझने में जरा भी देर नहीं लगती थी। नाटककार के आसपास अभिनेता, रंगकर्मी, दर्शक समाज, सब एकजुट थे। रंगमंच नहीं रंगभूमि का प्रत्येक अंग, नाट्य का हर पक्ष एक-दूसरे में परिव्याप्त था। कहीं कोई बाधा नहीं थी, क्योंकि संस्कृति अबाध थी। नाटककार जिस शब्द, जिस प्रतीक, जिस भाव और विचार को अपने नाटक में प्रयुक्त करता था, उसे सहज ही सब लोग समझ लेते थे। समझ से भाव, भाव से रस। पर आज जब अपनी संस्कृति नहीं है, तब नाटक लिखना कितना संकटपूर्ण काम है। नाटक और रंगभूमि के सारे अंग बिखरे हैं। नाटककार कहीं, अभिनेता कहीं, दर्शक कहीं। सबकी भाषा का अर्थ अलग-अलग। तब कैसे हो नाटक? किस भूमि पर हो?

जब अपनी संस्कृति थी, तब स्वभावत: उसकी अपनी भाषा थी। भाषा के माध्यम से सारी जीवन-ऊर्जा, साहित्य, कला, मनोरंजन के सारे प्रकार उसी संस्कृति से सहज ही फूट निकलते थे। सारा समाज उसी संस्कृति से जुड़ा-बंधा था। नाटककार, अभिनेता, रंगकर्मी, दर्शक समाज सब परस्पर एकाकार थे। अभिन्न थे। जोड़ने वाला वही एक तत्त्व था—अपनी संस्कृति।

संस्कृति क्या है? अपने जीवन-मूल्यों की सनातनता, अबाधता। जैसे गंगा नदी, हिमालय पर्वत, हमारी कथाएं, हमारे सनातन पात्र और विश्वास।

हजारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति को एक ऐसी संहारी, ध्वंसात्मक लोलुप सभ्यता का सामना करना पड़ा, जो प्रगति और आधुनिकता के नाम पर हमारी परंपरागत दृष्टि को नष्ट कर रही थी। यूरोप ने हर

कीमत पर अपनी संस्कृति जीवित रखी। उसी सांस्कृतिक शक्ति से उन्होंने दूसरों की संस्कृतियां नष्ट कीं। हमें अपनी संस्कृति से उखाड़कर उन्होंने हमारी सूखी जड़ पर आधुनिक 'इकेबाना' की फूल-पत्ती सजाने की कोशिश की। यही है भारतवर्ष की आधुनिकता और आधुनिक ड्रामा।

[स्व० डा० लक्ष्मीनारायण लाल के बहुचर्चित नाटक
'कथा-विसर्जन' की भूमिका से]

चन्द्रमा

पात्र —

चन्दाराय
विवेकी
विमान
निर्मल
कार्तिक
अजित दा
चौधरी

स्थान : मथुरा

काल : 1958 ई०

(निम्न मध्यवर्ग का एक बड़ा-सा घर—जिसमें कई परिवारों के लोग रह रहे हैं। और इस नाटक का दृश्य इसी घर के एक कमरे में उठता है। दायीं ओर इस कमरे में एक दरवाजा है—जो शेष बड़े घर की गैलरी में खुलता है। पर यह कमरा जैसे उस पूरे बड़े घर से अपनी एक स्वतंत्र सत्ता बनाये खड़ा है। कमरे में सामने दीवार से सटा एक तख्त बिछा हुआ है। दायीं ओर एक कुर्सी। सामने दीवार पर दो चित्र टंगे हैं—एक चन्दा के स्वर्गीय पिता का, दूसरा मां का। फर्श पर एक बड़ी-सी शीतल पाटी बिछी है। कमरे में बायीं ओर का दरवाजा बगल के भीतर वाले कमरे में खुलता है।

फरवरी के दिन हैं। सुबह के साढ़े आठ बजे हैं। पर्दा उठने पर यह मंच बिल्कुल सूना है। कुछ ही क्षणों बाद दायीं ओर से अजित दा का प्रवेश। धोती और कुर्ता पहने हुए, कंधे पर सफेद शाल। आंखों पर चश्मा, हाथ में छड़ी। भरापूरा बदन। अवस्था पचास वर्ष से कम नहीं।)

अजित दा : (पुकारते हैं) मोनी ! ओ रे मोनी ! मोनी !

(भीतर से चन्दा की आवाज आती है। अजित दा चुपचाप सामने दीवार के चित्रों को देखने लगते हैं। बायीं ओर से

चन्दाराय का प्रवेश। गोरे रंग की छरहरे बदन वाली युवती। मुख पर छवि श्री। ऐसी कि देखते ही मंत्रमुग्ध होना पड़ता है और इसकी बातें सुनकर चमत्कृत। अवस्था अभी पचीस वर्ष से अधिक नहीं, किन्तु जब यह बातें करती है, तो इसकी अवस्था का अनुमान लगाना कठिन हो जाता है।)

चन्दा : नमस्ते अजित दा !

अजित दा : नमस्ते मोनी !

चन्दा : कैसे आना हुआ ? सब आनन्द तो ?

अजित दा : हां, सब आनन्द !

चन्दा : बैठिये !

अजित दा : (कुर्सी पर बैठते हुए) यह बम्बई में तुम्हारा कौन है मोनी ?

चन्दा : कोई तो नहीं।···क्यों ?

अजित दा : अरे बम्बई से तुम्हारे नाम एक चिट्ठी आयी है !

चन्दा : मेरे नाम चिट्ठी ?

अजित दा : वह भी तुम्हारे पिता के पुराने घर के पते से ! देखो न, (पत्र निकाल कर पता पढ़ते हुए) कुमारी चन्दाराय चौधरी, 'केयर ऑफ' श्री निखिलराय चौधरी, बत्तिस डेम्पियर नगर, मथुरा, और भेजने वाले का इधर नाम छपा है—विवेकीनाथ, मैनेजिंग डाइरेक्टर, श्री द्वारका मिल्स लिमिटेड, तीन सौ चालीस कालबा देवी रोड, बम्बई—दो !

चन्दा : विवेकीनाथ !

अजित दा : यह लो चिट्ठी !

चन्दा : (चिट्ठी ले लेती है) विवेकीनाथ !

अजित दा : कौन है यह ? यह किसकी चिट्ठी है मोनी ?

(चन्दा लिफाफा फाड़कर पत्र देखती है)

चन्दा : विवेकी !

अजित दा : यह विवेकी कौन है मोनी ?

चन्दा : विवेकी ! (हंस पड़ती है) विवेकी ! कुमारी चन्दाराय के नाम···।

(हंसना चाह रही है। पर जैसे हंस नहीं पा रही है।)

अजित दा : मोनी !

चन्दा : विवेकी !···चन्दाराय !

(ठठाकर हंस पड़ती है, और गश खाकर उसी तखत के पावे के सहारे बैठ जाती है। आंखें बंद हैं। पत्र फर्श पर गिर गया है।)

अजित दा : (बौड़कर) मोनी ! हे भगवान ! यह क्या हो गया ? क्या है इस चिट्ठी में !

(अजित दा फर्श से चिट्ठी उठाते हैं। चन्दा झपट कर उनके हाथ से वह चिट्ठी ले लेती है और फिर उसी तरह आंख मूंदे बैठी रहती है।)

अजित दा : मोनी।

(अजित दा को कुछ न बोलने का संकेत करती है।)

चन्दा : विवेकी !

अजित दा : मोनी ! मोनी ! मोनी मां ! कैसी तबियत है ?

(चन्दा सम्हल कर स्वयं चुपचाप तखत पर बैठ जाती है। उसकी आंखें अब भी बंद हैं।)

अजित दा : मोनी मां ! किसकी चिट्ठी है यह ? क्या लिखा है इसमें ?

चन्दा : कुछ नहीं ! कुछ नहीं !

अजित दा : कुछ नहीं ! अच्छा···अच्छा ! फिर मैं जा रहा

हूं···नमोश्कार !

चन्दा : रुकिये ! देखिये, जिसकी यह चिट्ठी है न,···यह महाशय मेरे स्वर्गवासी पिता श्री निखिलराय चौधरी के उस निवास-स्थान बत्तीस डेम्पियर नगर मथुरा के पते से आज जब आपके उस बंगले पर पहुंचेंगे, तो आप कृपा कर उनसे स्पष्ट कह दीजियेगा कि राय चौधरी का परिवार यहां से अब कलकत्ते चला गया। बस, इतना ही उनसे कह दीजियेगा।···

अजित दा : अरे बाबा, ऐसा माफिक असत्य। यह तो कहना ही होगा कि निखिलराय चौधरी का स्वर्गवास हो गया।

चन्दा : अच्छा, इतना कह दीजियेगा, बस !

अजित दा : और निश्चय ही यह भी कहना होगा कि राय चौधरी का यह बत्तीस नम्बर का बंगला अब मेरा हो गया है। मैं, यानी अजित कुमार चक्रवर्ती। ठीक है न ?

चन्दा : हां, ठीक है। किन्तु शेष उन्हें कुछ न बताइयेगा। बहुत-बहुत धन्यवाद इसके लिए आपको !

अजित दा : हां, तो मैं उसको क्या बोल दूंगा ?

चन्दा : बस इतना ही कि वे लोग अब कलकत्ता चले गये !

अजित दा : (सोचने के बाद) और अगर वह हमसे कलकत्ता का पता पूछेगा तो हम क्या बोलेगा ?

चन्दा : कह दीजियेगा कि मैं उनका पता नहीं जानता !

अजित दा : ठीक है ! सब समझ गया !

(प्रस्थान। चन्दा फिर पत्र उठाती है, तभी अजित दा का पुनः प्रवेश)

अजित दा : अरे यह तो बताओ कि जो वहां आने वाला है उसका शुभ नाम क्या है ?

चन्दा : विवेकी !

अजित दा : ओ बाबा, विवेकी ! किन्तु यह है कौन ? कोई बंधु हैं क्या ? या कोई तुम्हारा···तुम्हारा कोई··· कोई···!

चन्दा : (उठकर खड़ी होती है) तुम्हारा सिर ! तुम्हारा माथा ! जा जा कह देना···उससे सब कह देना। मुझे तेरी दया नहीं चाहिये। जा···जा···।

(अजित दा का तेजी से प्रस्थान। चन्दा बढ़ कर बाहर का दरवाजा बंद कर लेती है। और उसी तरह आंखें बंद किये हुए दरवाजे पर टिकी खड़ी रह जाती है। फिर जैसे साहस बटोर कर कमरे में लौटती है। पत्र उठाती है। उसे आंखों से लगाती है, फिर उसमें अपना मुंह छिपाकर रो पड़ती है। कुछ ही क्षणों बाद बाहर से निर्मल की पुकार।)

निर्मल : मोना दी ! मोना दी !

चन्दा : (जैसे चमक उठती है) निर्मल ! (आंचल से झट आंखों के आंसू पोंछ डालती है।) निर्मल डियर ! माई डियर निर्मल !

(दरवाजा खोलती है। निर्मल का प्रवेश। चन्दा की सहेली। समवयस्क। गेहुंआ रंग। सुन्दर मुख। बड़ी-बड़ी निर्मल आंखें—नाम को सार्थक करने वाली। मांग में सिन्दूर। गुलाबी साड़ी पहने हुए।)

निर्मल : दीदी !

(दोनों एक-दूसरे के अंक में बंध जाती हैं।)

चन्दा : अरे ! तू आगरे से कब आयी ?

निर्मल : मतलब ?

चन्दा : अरे आगरे के पागलखाने से मेरा मतलब नहीं, मतलब है ससुराल से ! ससुराल माने अपने पति के घर से !

(दोनों हंसती हैं।)

निर्मल : कल रात आयी हूं ! बोलो, कैसी हो तुम ?

चन्दा : बस मौज है ! वंडरफुल ! फाइन ! बैठो !

निर्मल : (**कुर्सी पर बैठती हुई**) यह हाथ में चिट्ठी कैसी है ?

चन्दा : (**हंसती हुई**) ऐसे ही ! तुम बताओ, आगरे में तुम्हारे ठाट हैं न !

निर्मल : हां, सब आनन्द है वहां ! बंडरफुल···फाइन !

चन्दा : अकेली आयी हो कि तुम्हारे जैन साहेब भी प्रेम-डोर में बंधे पीछे-पीछे चले आये हैं ?

निर्मल : हां, साथ ही आये हैं ! आज सुबह लखनऊ गये हैं।

चन्दा : और परसों सुबह वह लखनऊ से यहां आ जायेंगे। और उसी दिन तुम उनके साथ आगरे लौट जाओगी। खूब हो भइया तुम दोनों भी। एक क्षण का भी विरह नहीं ! हाय !

(दोनों की हंसी)

निर्मल : दीदी ! तुम्हारी आंखें क्यों भरी-भरी लग रही हैं ? (**उठकर पास चली जाती है**) क्या बात है ?

चन्दा : कुछ तो नहीं !

निर्मल : नहीं, कोई बात जरूर है ! या तो तुम रात भर सोयी नहीं हो, या तुम···। क्या बात है दीदी ! मुझे नहीं बताओगी क्या ? दीदी !···दीदी !

चन्दा : बताने लायक कुछ नहीं है निर्मल। बस, यही समझो कि तुम एकाएक यहां आयीं, और मेरी

आंखें भर गयीं !

निर्मल : दीदी ! अब मुझसे भी तुम इसी तरह छिपाओगी ! जाओ कुट्टी, मैं अब नहीं बोलूंगी, जाओ।

चन्दा : अरे रे रे ! सुनो तो निर्मल ! अच्छा आओ मिल्ली !···मिल्ली ! (**दोनों हंसती हैं।**) सुनो ! मुझसे अपने घर की बातें करो निर्मल ! अपने पति की। परिवार की ! (**रुककर**) जब तुम आगरे से यहां मेरे पास आती हो तो मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं यहां आयी हूं।

निर्मल : तो मेरे साथ तुम आगरे में रहती क्यों नहीं ! सच दीदी, तुम मेरे ही साथ रहो !

चन्दा : तुम्हारे साथ मैं ? (**एक करुण हंसी हंसकर रह जाती है**) अच्छा निर्मल···लो यह चिट्ठी पढ़ो···।

(निर्मल चिट्ठी पढ़ने लगती है।)

निर्मल : दीदी ! यह तो बड़ा ही सुन्दर पत्र है ! यह विवेकी कौन है ?

चन्दा : विवेकी ! जो मुझे चन्द्रमा कहता था।

निर्मल : इतना स्नेहमय पत्र ! अरे दीदी, आज पांच फरवरी है न ! ओहो ! आज ही तो उसने यहां अपने पहुंचने की तारीख लिखी है ! अरे ! पूरे ग्यारह वर्ष बाद यह पत्र लिखा है। मोना दी। यह कौन है ? कौन है यह इतना सुन्दर पत्र लिखने वाला ?

चन्दा : विवेकी, मुझे चन्द्रमा कहने वाला !

निर्मल : पर यह है कौन ? बताओ दीदी !···दीदी ! ओ दीदी !

चन्दा : निर्मल, यह एक भूली-बिसरी हुई कहानी है। बल्कि कहानी थी यह ! एक भटकी हुई कहानी !

निर्मल : कैसी कहानी ?

चन्दा : तुम उसे न सुनती तो अच्छा ही रहता निर्मल !

निर्मल : अगर ऐसा है तो वह मुझे मत सुनाओ दीदी !

चन्दा : नहीं, अब तो सुनाऊंगी ही, और तुम्हें न सुनाऊंगी तो किसे सुनाऊंगी !

(निर्मल एक टक चन्दा का मुंह देख रही है। चन्दा शून्य में।)

चन्दा : आज से करीब तीस साल पहले मेरे पिता जी अकेली मां को अपने संग लिये हुए कलकत्ते के भवानीपुर से विदा होकर यहां मथुरा जी आये थे। संतानहीन। मथुरा आकर उन्होंने यहां के सबसे सुन्दर मुहल्ला डेम्पियरनगर में वह बंगला खरीदा। भवानीपुर से उनके साथ नौकर-चाकर, रसोइया, मोटर ड्राइवर वगैरह सब आये थे। और दो ही वर्षों के भीतर मेरे पिता जी पूरे मथुरा में जैसे सबके हो गये। क्या बंगाली, क्या अबंगाली सबके। (रुककर) एक दिन प्रातःकाल मेरे पिता जी को एक नवजात शिशु मिल गया। घर में लाकर पिता जी ने उसका नाम रखा विवेकी। वह होनहार शिशु उधर चार वर्ष का हुआ कि उसी के पुण्य से इधर इस घर में मेरा जन्म हुआ !

निर्मल : ओ हो ! यह वही विवेकी है ! मोना दी, तुमने मुझे यह कभी नहीं बताया !···अच्छा, फिर क्या हुआ ? बोलो दीदी !···दीदी !

चन्दा : बस कुछ नहीं ! खतम !

(उदास देखती रह जाती है।)

निर्मल : मोना दी, ओ दीदी !

चन्दा : आगे कोई विशेष बात नहीं। शेष महज एक कहानी है।

निर्मल : (चुप है।)

चन्दा : फिर हम दोनों बड़े हुए। विवेकी पढ़ने में बहुत तेज—बेहद प्रतिभाशाली, और मैं उतनी ही लद्धड़। दसवीं कक्षा में उसे पूरे बोर्ड में दूसरी पोजीशन मिली—मैथमेटिक्स, इंगलिश, हिन्दी इन तीन विषयों में उसे डिस्टिंग्शन मिला। मैं तब छठी कक्षा में पढ़ती थी।

निर्मल : फिर ? आगे क्या हुआ ?

चन्दा : छोड़ो भी निर्मल ! कोई और बात करो डियर। अपने घर की बातें !

निर्मल : दीदी ! मेरी प्राण सखी। मेरी ओर देखो। अच्छा हां, फिर क्या हुआ उस विवेकी का ?

चन्दा : विवेकी का ?

निर्मल : हां !

(चन्दा की आंखें शून्य में जैसे टंग जाती हैं।)

निर्मल : मोना दी ! मोना दी !

चन्दा : अरे ! मैं तो मौसम के विषय में सोचने लगी ! यह बसंत ऋतु भी क्या है। सब में पुष्प, सब में सुगंधि !

निर्मल : हाय हाय ! रहने भी दीजिये !

चन्दा : अरे यह फागुन माह है, तुझे कुछ पता भी है ?

निर्मल : अच्छा-अच्छा ज्यादा मत बनाइये, मुझे खूब पता है बसंत ऋतु के आगमन का !

चन्दा : अरे पता है तो ब्रज की एक होरी सुना न ! फिर मैं तेरे लिए बसंतबहार गा दूंगी, हां !

निर्मल : तुम भी कितनी चंट हो मोनादी। कहां की बात कहां ले उड़ी ! हूं, फिर क्या हुआ विवेकी का ?

चन्दा : मैं मां की दुलारी थी, विवेकी पिता जी का दुलारा था। वह जितना ही गंभीर, मैं उतनी ही चंचल। तो मुझसे उससे रोज लड़ाई ठनी रहती थी। वह मुझ पर अपना शासन चलाना चाहता था, और मैं उस पर। जब मैं स्कूल से लौटती और घर पर म्यूजिक और डांस टीचर से गान और नृत्य सीखती, तो वह दूर से ही मुझे लाल-लाल आंखें दिखाता। फिर वह मुझसे लड़ता—"बोल···बता यह गाना-नाच सीखकर क्या करेगी तू ? यह भी कोई विद्या है ? यह कला तेरे किस काम आयेगी ? **(हंस पड़ती है)** अरे बाबा रे बाबा ! वह विवेकी···!

निर्मल : फिर ?

चन्दा : तब मां विवेकी से हंसकर कहती थी—"देखना विवेकी, मेरी मोना एक दिन भारतवर्ष की सबसे बड़ी कलाकार होगी।" उसकी कला और यश से हम सब लोग गौरवान्वित होंगे। **(रुककर)** पर विवेकी कहता था—"यश और गौरव धन तथा पद से मिलता है, कला से नहीं। कला तो पराश्रित वस्तु है ! **(हंसती हुई)** खूब वणिक बुद्धि थी उसकी ! खूब···!

निर्मल : फिर क्या हुआ ?

चन्दा : इंटर की परीक्षा में वह पूरे यू० पी० बोर्ड में फर्स्ट क्लास फर्स्ट आया।

निर्मल : वंडरफुल !

चन्दा : जी हां, फिर तो उसका दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ गया। पर मैं अपनी संगीत कला के सामने उसे कुछ नहीं गिनती थी। वह बी० कॉम० में पढ़ने लगा। और एक दिन मुझसे उसकी भयानक लड़ाई हुई। गुस्से में मेरे मुंह से वह निकल गया जो मुझे कभी नहीं कहना था।

निर्मल : क्या ?

चन्दा : विवेकी के अनाथ होने की बात।

निर्मल : ओह ! हाय···हाय !

चन्दा : और उसी रात वह विवेकी हमारे घर से न जाने कहां गायब हो गया। घर में तहलका मच गया, पिता जी ने अन्न-पानी सब त्याग दिया और मैं चुपचाप अपना मुंह पीटती रह गयी। पिता जी ने सारे अखबारों में विवेकी का चित्र छपवा कर उसके पाने का विज्ञापन दिया। पुरस्कार घोषित किये। विवेकी को पाने के लिए पिता जी ने क्या-क्या नहीं किया, पर उसका कोई पता नहीं चला ! विवेकी···!

(रो पड़ती है।)

निर्मल : वही विवेकी आज इतने वर्षों बाद आ रहा है—यह तो बड़े भाग्य और खुशी की बात है दीदी !

चन्दा : भाग्य और खुशी !

(चन्दा अपने आपको सम्हालती हुई भीतर भाग जाती है। क्षण भर बाद बाहर से विमान की आवाज आती है।)

निर्मल : दीदी ! मोना दी !

आवाज : चन्दा ! चन्दा···!

निर्मल : कौन हैं ?

(बाहर से बंद किवाड़ पर दस्तक और वही तेज पुकार। चंदा भीतर से निकलती है।)

चन्दा : निर्मल, कह दो कि मैं अन्दर नहीं हूं।

निर्मल : अच्छा, तुम अंदर जाओ।

(चंदा भीतर जाती है। निर्मल किवाड़ खोलकर)

निर्मल : कौन ?

आवाज : मैं···मैं विमान हूं।

(विमान का प्रवेश। अवस्था पैंतीस वर्ष, पैंट और कमीज पहने।)

विमान : चन्दाराय हैं ?

निर्मल : वह तो नहीं हैं !

विमान : सच ?

निर्मल : बिल्कुल सच !

विमान : सच ! बिल्कुल सच ! **(तेज हंस पड़ता है और बढ़ कर कुर्सी पर बैठ जाता है)** यह नहीं हो सकता जी ! मैं देख रहा हूं—मेरी चन्दा वह भीतर कमरे में है। आप मुझे जानती नहीं क्या ?

निर्मल : भला मथुरा में आपको कौन नहीं जानेगा !

विमान : क्यों नहीं, मैं मथुरा का पंडा जो हूं। आइए इसी बात पर हाथ मिलाइए। चलिये। अजी, मेरे हाथ में जिसका हाथ आ जाता है उसको मुझसे कोई खतरा नहीं। हां, आइये ! तो नहीं मिलाइयेगा हाथ ?

निर्मल : मेहरबानी करके इस समय आप यहां से चले जाइये !

विमान : क्योंकि आप अकेली यहां हैं और मैं मैं···मैं··· खराब आदमी। आप यही सब सोच रही हैं न ?

निर्मल : आप यहां से जाते हैं कि नहीं ?

विमान : नहीं भाई, आप भी कहां की बातें करती हैं। बिना अपनी चन्दा को देखे यह चकोर यहां से नहीं जा सकता !

निर्मल : आपको अपने ऊपर शर्म नहीं आती ? घियामण्डी मुहल्ले के इतने सम्भ्रांत भार्गव वंश में आप···!

विमान : कुल कलंक निकले, यही न ! **(हंसता है)** यही कह रही थी, न आप ! यह तो मुझे सभी कहते हैं ! **(रुककर)** कहिये आप अपनी ससुराल से यहां नैहर कब आयीं ?

निर्मल : कल रात !···पर आप इस तरह क्यों हैं ? यह आपको शोभा नहीं देता ! घर में आपकी इतनी अच्छी पत्नी है। इतना···।

विमान : जी हां, हैं।

निर्मम : उससे आप तीन बच्चों के बाप हैं।

विमान : जी बेशक बाप हूं। आगे···।

निर्मल : इतना काफी नहीं है क्यों ?

विमान : यह आप क्या जानें ! आप तो एक परम संतुष्ट सौभाग्यशाली गृहिणी हैं न !

निर्मल : और आप ?

विमान : बस यही जो आपके सामने हूं—जो बाहर वही भीतर। कुल कलंक। **(हंस पड़ता है।)** आवारा !

निर्मल : देखिये मेहरबानी करके आप इस तरह यहां मत हंसिये !

विमान : अजीब बात है। आप तो हर चीज पर प्रतिबंध डालती जा रही हैं। शायद प्रतिबंध ही आपका

जीवन है क्यों—तो यही आपके दाम्पत्य जीवन की सफलता का रहस्य है न। ओहो! फिर तो मैं समझता हूं कि किसी जेल में ही दो स्त्री-पुरुष कैदियों की आपस में शादी कर दी जाय, तो वही दाम्पत्य सुख और शान्ति का आदर्श होगा!

निर्मल : बहुत अच्छे विचार हैं आपके!

विमान : ये मेरे विचार नहीं, यह तो आपके हैं जी!

निर्मल : नहीं। जिस प्रतिबंध के लिए आपके दुखी दिमाग में एक कैद का चित्र है न, उसके लिए मेरे मन में एक सहज उन्मुक्त फले-फूले हुए वृक्ष का चित्र है।

विमान : हटाइये इन बातों को। मेहरबानी करके मेरी चन्दा रानी को बुलाइये! **(स्वयं पुकारता है)** चन्दा! ओरी चन्दा महारानी!

निर्मल : आप आदमी हैं कि···!

विमान : (गुस्से से) मैं विमान हूं।

(उठकर आवेश में घूमने लगता है। भीतर से चंदा का प्रवेश।)

चन्दा : विमान!

विमान : जी! नमस्ते!

चन्दा : तुम अपनी सारी बत्तमीजी मुझ पर उछाल सकते हो, पर मेरी इस सखी पर कोई एक तेज जबान भी कहने का तुम्हारा कोई भी अधिकार नहीं!

निर्मल : दीदी छोड़ो। मुझे इन्होंने कुछ भी नहीं कहा है!

चन्दा : मेरी ही तरह तुमने दुनिया की सारी स्त्री जाति को समझ लिया है क्या!

विमान : तो?

चन्दा : जाओ, इस समय तुम चले जाओ यहां से।

विमान : नहीं, आज मैं तुमको यहां से ले जाऊंगा। पता नहीं मैं तुम्हारे पास आकर इतना शरीफ क्यों हो जाता हूं? पर अब मैं अपनी उस शराफत को मार डालूंगा और मैं तुमको यहां से घसीट कर ले जाऊंगा।

निर्मल : विमान!

विमान : चुप रहिये आप!

निर्मल : शराफत की भी एक सीमा होती है। मोना दी···!

विमान : आप चुप रहिये, मैं एक बार फिर कहे दे रहा हूं आपको, आप बड़ी शरीफ बनके यहां आयी हैं न! आप शायद असली विमान को नहीं जानतीं?

चन्दा : तुम्हारी बदजतान आज बंद नहीं होगी?

विमान : नहीं।

(विराम)

चन्दा : अच्छा विमान! मुझ पर तुम दया करके इस समय चले जाओ यहां से!

विमान : आय-हाय। कुर्बान जाऊं। तुम इस तरह से कहोगी तो क्यों नहीं चला जाऊंगा। आज दस सालों से यही तो कर रहा हूं **(भाव बदल लेता है)** चलो भाई विमानचंद्र भार्गव। चलो! नहीं-पहले तुम चलो। नहीं भाई पहले तुम चलो। नहीं नहीं, पहले तुम चलो। नहीं, आगे तुम चलो! नहीं यार मैं आगे नहीं चलता। चलो न यार, क्या बेकार में नखरे दिखा रहे हो? फिर वही मजाक। **(सहसा)** अच्छा हटाओ, हम दोनों यहां से एक साथ चलते हैं।

(तेजी से सहसा बाहर निकल जाता है।)

निर्मल : ओहो ! यह तो बड़ा भयानक आदमी होता जा रहा है।

चन्दा : ठीक जैसी कि मैं भयानक हूं। (हंस पड़ती है।)

निर्मल : दीदी !

चन्दा : निर्मल !

निर्मल : यह तो मुझे मालूम है दीदी ! पर यह आदमी मुझे कतई पसन्द नहीं।

चन्दा : क्यों ?

निर्मल : अगर यह सच्चा है तो तुम्हें शादी करके अपने घर क्यों नहीं ले जाता ?

चन्दा : सच्चाई और शादी। (हंसती है।) निर्मल, कोई और बात करो डियर ! अच्छा रुको, मैं तुम्हारे लिए चाय बनाकर लाती हूं।

(जाने लगती है, निर्मल उसके हाथ पकड़ लेती है।)

निर्मल : नहीं, नहीं दीदी। चाय की कोई जरूरत नहीं। मैं आज अपने पिता जी से इस विमान के विषय में कहूंगी—यह यहां ऐसा करता है ! तुम्हें इस तरह···!

चन्दा : निर्मल छोड़ो इन बातों को।···मैं उसका वह रास्ता नहीं काटती। तभी तो वह ऐसा करता है।

निर्मल : ऐसा क्यों है दीदी ?

चन्दा : सोचती हूं इस दुनिया में कोई तो एक ऐसा आदमी है, जो मुझे इतना चाहता है। जिसे मेरी इतनी आवश्यकता है !

निर्मल : (साश्चर्य) दीदी ! यह तुम कह रही हो ?

चन्दा : और कौन ऐसा कहेगा निर्मल !

निमल : तो इस रास्ते को तुम सही समझती हो दीदी ?

चन्दा : इस जीवन में क्या सही है, क्या गलत है—तर्क से इसका पता नहीं लगता निर्मल। मैं कभी-कभी सोचती हूं, सूर्य का उदय ही सब कुछ नहीं है, उसका अस्त होना भी मूल्यवान है।

(सहसा बाहर दरवाजे पर एक तेज दस्तक)

चन्दा : कौन ?

आवाज : चौधरी।

चन्दा : कहिये, क्या बात है ?

(चौधरी का प्रवेश—पचास-पचपन वर्ष की अवस्था। भरी-पूरी मूंछें। कठोर मुख। धोती और कुर्ते में। हाथ में चांदी की मुठिया वाली मोटी छड़ी।)

चौधरी : मेरे इस बड़े घर में—मेरे सारे किरायेदारों ने मुझसे शिकायत फिर की है—ये लोग अब बिल्कुल नहीं चाहते कि तुम यहां रहो।

चन्दा : क्यों ?

चौधरी : मैंने कितनी बार यह बात तुम्हें समझायी है कि ये लोग घर-गृहस्थी वाले हैं। तुम्हारी वजह से यहां का माहौल खराब होता है। मैं आज सिर्फ यही कहने आया हूं कि तुम सीधे से मेरा यह मकान छोड़कर यहां से फौरन चली जाओ। नहीं तो···

चन्दा : नहीं तो क्या ?

चौधरी : मैं अपने आदमियों से तुम्हारा सामान यहां से सड़क पर फेंकवा दूंगा।

चन्दा : और मुझे ?

चौधरी : ओह ! मुझसे जबान लड़ाने चली हो ! तुम्हें भी उसी सामान के साथ···।

चन्दा : ···सड़क पर फेंकवा दूंगा। (हंस पड़ती है।) मैं

सामान नहीं हूं चौधरी साहब। मैं इंसान हूं—एक चेतन प्राणी !

चौधरी : वह जो कुछ भी हो तुम अपने लिए वह बनी रहो। पर तुम यहां से अब निकल जाओ। मैं तुम जैसी बदनाम लड़की को यहां घर-गृहस्थ किरायेदारों के साथ नहीं रहने देना चाहता।

निर्मल : जरा आप अपनी जबान सम्हाल कर बोलिये। आपको पता है, आप क्या बकते जा रहे हैं ?

चन्दा : निर्मल, तुम मत परेशान हो डियर।

(चौधरी का प्रस्थान)

निर्मल : बड़ा बत्तमीज आदमी है यह !

(बढ़कर दायीं ओर का दरवाजा बंद कर लेती है।)

चन्दा : (हंसती है) निर्मल ! आसपास के घर-गृहस्थ लोग मेरे पड़ौसी हैं। और यह चौधरी मेरा मकान मालिक है। सबका अपना-अपना अधिकार जो है।

निर्मल : पागल हैं ये लोग। जानवर कहीं के।

चन्दा : यह मेरे जीवन की वास्तविकता है। निर्मल ! अब जाओ, फिर आना, हां। वैसे चाहती यही थी, कि तुम मेरे यहां मत आया करो।

निर्मल : ऐसा मेरे लिए मत सोचो दीदी। मैं तुम्हें आज से नहीं, तुम्हें तब से जानती हूं, जब तुम अपने पिता के साथ डेम्पियर नगर में रहती थीं। वही चंदाराय।

चन्दा : नहीं-नहीं। अब मैं वह चंदाराय कहां ? (रुककर) अब तुममें और मुझमें बड़ा फर्क है। तुम एक इतने अच्छे घर की पत्नी और मैं···।

निर्मल : हां-हां, तुम क्या ?

चन्दा : अपना यथार्थ।

निर्मल : ओहो ! अपने-अपने यथार्थ तो सभी हैं दीदी !

चन्दा : सब अपने एक-एक यथार्थ होते हैं। पर मैं अपने में कई यथार्थ हूं। मैं एक चंदा नहीं, अनेक चंदा हूं। एक ही में अनेक यथार्थ—जैसे एक लड़की में अनेक लड़कियां। जैसे एक नारी में अनेक नारियां। किन्तु तुम सिर्फ एक स्त्री हो—जिसका शुभ नाम है श्रीमती निर्मल जैन !

(हंसने लगती है। निर्मल गम्भीर है।)

चन्दा : (उसे बांहों से पकड़कर) यह क्या, मेरे कारन तुमने अपना मुंह बना लिया ! अरे हंसो न। असल चीज तो यही प्रसन्न रहना है, नहीं तो यह प्रकृति हमें धक्का देकर न जाने कहां फेंक देगी—जैसे पीले पत्तों और मुर्झाये फूलों को वह प्रकृति अपने पर सहन नहीं कर पाती। ठीक वैसे ही।

(निर्मल की आंखें भर आती हैं। वह रुमाल से अपने आंसुओं को सम्हालती हुई वहीं तखत पर बैठ जाती है।)

चन्दा : मेरे कारन तुम मत रोओ निर्मल। नहीं तो मुझे बेहद तकलीफ होगी। पता नहीं विधाता ने इतने विपरीत तत्त्वों से मुझे क्यों बनाया था ? मुझे न तो इस दुनिया के यथार्थ का कोई अनुभव था, न ज्ञान। बस, महज भावना थी मेरे पास। पर विधाता ने एक दिन मुझसे सब कुछ छीनकर अकेला इस चौराहे पर ला खड़ा कर दिया—एक काली तख्ती मेरे माथे पर लटका कर और एक तख्ती पीठ पर चिपकाकर ! रोओ नहीं निर्मल। तुम भाग्यवान हो क्योंकि तुममें अभी प्रेम है।

निर्मल : (जैसे जग जाती है।) प्रेम ! तुम्हें अब भी प्रेम में

विश्वास है ? जिस प्रेम ने तुमको इतना विश्वास-घात दिया, जिसने तुम्हें इतना···।

चन्दा : फिर भी वह सत्य है। अगर यह असत्य होता तो इंसान सदियों से इससे पागल नहीं बनाया जा सकता था।

निर्मल : यह तुम कह रही हो मोना दी ?

चन्दा : एक दिन जिसने कहा था कि स्त्री-पुरुष का प्रेम मानव सभ्यता का सबसे बड़ा इतिहास है—यह सबसे पहला और बड़ा सत्य उसी को मिला था।

(बंद दरवाजे पर किसी की दस्तक आती है।)

चन्दा : कौन ?

आवाज : दीदी, मैं हूं कार्तिक।

(चंदा दरवाजा खोल देती है। कार्तिक का प्रवेश। धोती और कुर्ता पहने हुए। दायें कंधे पर अंगोछा है। हाथ में कुछ लिए हुए है। अवस्था बाईस-तेईस वर्ष)

कार्तिक : नमस्ते दीदी मां !

चन्दा : अरे कार्तिक ! कहां तू आज रास्ता भूल गया है ? यह देख मेरी सहेली हैं। चल इन्हें नमस्ते कर !

कार्तिक : नमस्ते।

चन्दा : यह मेरा भाई है।

कार्तिक : बहिन जी, मैं डेम्पियर नगर में राय चौधरी सरकार साहेब का यहां असिस्टेन्ट रसोइया था। मुझे तब चौके का काम करने नहीं आता था। इसी दीदी मां ने मुझे मार-मार कर सारा भोजन व्यंजन बनाने की 'टरेनिंग' दी थी।

चन्दा : धत्, झूठा कहीं का।

कार्तिक : सच, झूठा नहीं।

चन्दा : आजकल यह द्वारकाधीश मंदिर के पुजारी के यहां हेड भंडारी है।

कार्तिक : जी हां !

निर्मल : अच्छा मोनादी, अब चलूंगी। नमस्ते···।

कार्तिक : नमस्ते !

(निर्मल का प्रस्थान। चन्दा कुर्सी पर बैठती हुई)

चन्दा : यह हाथ में क्या ले आया है रे ?

कार्तिक : पहले बैठूं तब न बताऊं !

(नीचे जमीन पर ही बैठने लगता है।)

चन्दा : नहीं-नहीं। चल तखत पर बैठ। बैठता है कि···।

कार्तिक : अच्छा-अच्छा, यहां चटाई पर बैठ जाता हूं।

चन्दा : अब फिर मारूंगी तुझे हां, नहीं तो चल सीधे तखत पर बैठ।

कार्तिक : अच्छा···अच्छा !

(तखत पर बैठता है।)

चन्दा : हां अब बोल। यह हाथ में क्या है ?

कार्तिक : आज शिवरात्रि है न दीदी ! मैं आपके लिए यह प्रसाद बना कर ले आया हूं।

चन्दा : अरे मैं क्या करूंगी प्रसाद रे ? मैं कोई व्रत-त्योहार नहीं रखती।

कार्तिक : तो इससे क्या दीदी ! देखो न। यह है कुटू की पूड़ी, यह है मेवे की खीर। यह है पिस्ता-बादाम का हलुआ। यह है खोये की बरफी।

चन्दा : अरे-रे-रे ! ऐसे उत्तम व्यंजन के लिए तो पहले द्वारकाधीश बनना पड़ेगा रे।

कार्तिक : दीदी मां, मैं इसे आपको खिलाकर अपनी व्यंजन कला का आपसे सर्टीफिकेट लेने आया हूं। बोलो

दीदी, मैं इसे कहां रखूं ?

चन्दा : अरे पगला तू जानता नहीं, मैं अब किसी और के हाथ का बना खाना नहीं खाती। और मेवा, मिठाई, दूध, घी तो छूती ही नहीं !

कार्तिक : पानी···पानी···पानी तुम दीदी। अर्थात् तुम दीदी···।

चन्दा : हां हां, पानी तुम्हारी दीदी हाथ से गयी अब।

कार्तिक : (प्रसन्न मुख) हो हो हो। तुम हंसी कर रही हो मुझसे। मैं उसे तुम्हारे चौके में रख आता हूं।

(तेजी से भीतर जाता है और वापस आता है।)

चन्दा : सच रे कार्तिक। मैं यह सब नहीं खा सकती।

कार्तिक : अच्छा, सर्टीफिकेट देने के लिए जरा-सा ही खा लेना दीदी। अब मैं जाऊंगा—नमस्ते।

चन्दा : अरे रे रे ! जरा रुक तो।

(चंदा भीतर जाकर आती है।)

चन्दा : यह ले इनाम अपना। पान खा लेना।

कार्तिक : हाय भगवान ! पांच रुपये का पान। तुम भी गजब हो दीदी मां। हाथ जोड़ता हूं मुझे यह इनाम मत दो। यह शरीर यह जीवन तो तुम्हारे घर से मिला ही है। अब मुझे और क्या चाहिए !

चन्दा : हां-हां, खूब बातें करना आ गया न तुझको। अरे तू सोचता है कि तेरी दीदी अब निर्धन हो गयी है। अरे पगला, अभी बहुत कुछ है मेरे पास, रुपये, गहने···।

कार्तिक : (सभय) चुप-चुप। दीदी चुप। नहीं तो कहीं वह अजितकुमार चक्रवर्ती सुन लेगा न, तो सब ठग लेगा तुमसे।

चन्दा : नहीं रे। अब मुझे कोई क्या ठग लेगा ?

कार्तिक : क्यों नहीं दीदी। याद है न। राय चौधरी सरकार के स्वर्गवास के बाद ही किस तरह से कागज दिखाकर उसने डैम्पियर नगर के उस मकान को तुमसे ले लिया। बोला कि तुम्हारे पिता ने यह मकान मेरे यहां गिरवी रखा था। बेईमान—चोर कहीं का। फिर बैंक के उतने सारे रुपये तुमसे निकलवाकर किस तरह से उसने सारा पाठ पढ़ा दिया।

चन्दा : छोड़ उन बातों को कार्तिक।

कार्तिक : चार सौ बीस कहीं का ? बिजनेस में शेयर, फिक्स डिपोजिट, नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट—न जाने क्या-क्या नौ दो ग्यारह करके सब तिड़ी कर दिया। सर्वनाश हो उसका।

चन्दा : नहीं-नहीं रे कार्तिक। तू तो भाग्य और प्रारब्ध को मानता है न। फिर संतोष कर न।

कार्तिक : तू भी भाग्य-प्रारब्ध को मानती है दीदी ?

चन्दा : मैं तो नहीं मानती।

कार्तिक : फिर कैसे इतना सब संतोष करती हो ?

चन्दा : (हंसती है) सब सहकर। सहना कोई मामूली बात है रे ! (रुककर) ये ले अपना इनाम···। ले न।

(साग्रह उसकी हथेली में नोट रख देती है। कार्तिक उसे असहाय दृष्टि से देखता रह जाता है—जैसे अभी वह रो देगा। वह तेजी से चला जाता है। चन्दा कुछ क्षणों तक उसी ओर देखती रह जाती है, फिर वह गा उठती है।

मरिते चाहि ना आमी सुन्दर भुवने
मानवेर माझे आमि वांचिबारे चाइ।

एइ सूयकरे एइ पुष्पित काननेजीवन्त हृदय माझे यदि स्थान पाइ !

(गाती हुई भीतर जाती है। तखत पर नयी चादर लाकर बिछाती है। कुर्सी ठीक से रखती है। और वही गाती हुई फिर भीतर चली जाती है। क्षण-भर बाद बाहर के दरवाजे पर एक हल्की-सी दस्तक। एक बार फिर दूसरी बार। चन्दा भीतर से निकलती है।)

चन्दा : कौन ?

आवाज : चन्द्रमा !

चन्दा : कौन ?

आवाज : विवेकी।

(विवेकी का प्रवेश। बड़ा ही प्रभावशाली व्यक्तित्व। सुन्दर कीमती सूट में। एक हाथ में बैग, दूसरे में अटैची। कमरे में आकर हतप्रभ खड़ा रह जाता है। चन्दा की दृष्टि तो पहले विवेकी के मुख पर टिक-सी जाती है, पर वह दूसरे ही क्षण भीतर भागती है।)

विवेकी : चन्द्रमा ! चन्द्रमा ! तुमने मुझे पहचाना नहीं क्या ? मैं वही विवेकी हूं। चन्द्रमा !···ओ चन्द्रमा !

(वह पूरे कमरे को निहारता है। सहसा उसकी दृष्टि दीवार के उन दोनों चित्रों पर जाती है। वह उसे निहारता ही रह जाता है। उसी बीच भीतर से चन्दा आकर दरवाजे के सहारे चुपचाप खड़ी रह जाती है।)

विवेकी : चन्द्रमा ! देखा मैं आया हूं। देखो। मुझे देखो चन्द्रमा। बोलो। बोलो न कुछ चन्द्रमा !··· चन्द्रमा !

(चन्दा चुप है। न जाने कहां शून्य में देख रही है। विवेकी उसे एकटक देख रहा है।)

विवेकी : ओह ! क्या से क्या हो गया। काल की भी कैसी निर्मम गति है !

चन्दा : कैसा काल ?

विवेकी : वही जो बीता है।

चन्दा : काल को तो बीतना ही था।

विवेकी : तुमने मुझे पहचान लिया चन्द्रमा ?

चन्दा : क्यों ?

विवेकी : तुम मुझे देख कर भीतर क्यों भाग गयी थीं ?

चन्दा : (चुप है।)

विवेकी : बोलो न। मुझसे बहुत रूठ गयी हो क्या ?

चन्दा : रूठने का मेरा क्या अधिकार ?

विवेकी : क्यों नहीं। वह अधिकार कहां जायेगा ? चन्द्रमा ! मेरी ओर देखो। मैं तुम्हारा वही विवेकी हूं।

चन्दा : पर मैं वह चन्द्रमा नहीं हूं। मैं सिर्फ एक चन्दाराय हूं।

विवेकी : चन्द्रमा !

चन्दा : मुझे मत पुकारो उस नाम से।

विवेकी : मुझे सब मालूम हो गया। सारी करुण कथा।

चन्दा : सब मालूम हो गया ? सब···?

विवेकी : हां, मैं सीधे स्टेशन से बत्तीस डेम्पियर नगर पहुंचा। वहां घर पर मैंने तुम्हारा नाम लेकर पुकारा। भीतर से एक नौकर निकला। उसने मुझे बताया कि मां और पिता जी दोनों का स्वर्गवास हो गया। और तुम अब यहां हो। (रुककर) ईश्वर ने मुझे इतना दण्ड दिया।

चन्दा : आपको कैसा दंड ?

विवेकी : मुझे तुम 'आप' क्यों कहती हो। मैं वही विवेकी नहीं हूं क्या ?

चन्दा : इंसान वही कहां रह जाता है ! उसमें विकास होता है। काल का रथ उसके माथे पर से गुजर कर आगे बहुत आगे चला जाता है। और कोई कुछ हो जाता है, कोई कुछ।

विवेकी : चन्द्रमा !

चन्दा : आपको किसने बताया कि मैं यहां हूं ? किसने बताया ?

विवेकी : उसी नौकर ने।

(जैसे वह लड़खड़ा कर उसी कुर्सी पर बैठ जाता है। पाकेट से रूमाल निकालकर अपने उमड़ते आंसुओं को रोकने लगता है।)

चन्दा : आप किसके लिए रो रहे हैं ? मां और पिताजी के स्वर्गवास को तो बहुत दिन हो गये। मुझे तो वह सब भूल भी गया। हां, केवल इतनी ही याद है कि अपनी मृत्युशय्या पर पिताजी ने बराबर उसी विवेकी को ही याद किया था।

विवेकी : क्या कहा था उन्होंने ?

चन्दा : (केवल नकारात्मक सिर हिलाती है।)

विवेकी : बताओ न, क्या कहा था पिताजी ने ?

चन्दा : वही माया-मोह की बात। मृत्युशय्या पर लेट कर जैसे हर इंसान हाहाकार करता है, वही।

विवेकी : चन्द्रमा, तुम कैसी हो गयी हो ?

चन्दा : उस सत्यभाषी नौकर ने मेरे बारे में आपसे नहीं बताया क्या ? उसने यह नहीं कहा कि पिता की

मृत्यु के बाद जब मैं अकेली हो गयी तो एक दिन मैं मां बन गयी ?

विवेकी : (जैसे चौंककर खड़ा हो जाता है) चन्द्रमा !

चन्दा : हां-हां चन्द्रमा।
चन्द्रमा का कलंक। (सगर्व) पर मैंने उसे अपना कलंक नहीं माना। मैंने उसे अपना सत्य माना। अपनी सहज प्रकृति। (रुककर) यह सारा समाज मेरे चारों ओर चिल्लाता रहा, पर मैं अपने अन्तस् का पवित्र संगीत सुनती रही। और एक दिन मैंने अपने उस संगीत को जन्म दिया। मेरा पुत्ररत्न। मेरा शिशु।

विवेकी : कहां है वह शिशु ?

चन्दा : कौन हो तुम मुझसे इस तरह से पूछने वाले ? कौन हो तुम ?

(विवेकी अपने हाथों में अपना सिर थामे माथा नीचे झुकाये हुए है।)

चन्दा : पूरे एक वर्ष बाद मेरा वह शिशु फिर मुझमें ही जैसे अन्तर्धान हो गया !

विवेकी : मृत्यु हो गयी उसकी ?

(चन्दा मूर्तिवत् खड़ी है। विवेकी जड़वत् वहीं माथा झुकाये बैठा है।)

विवेकी : सुनो चन्द्रमा !

चन्दा : मुझे तुम चन्दाराय क्यों नहीं कहते ?

विवेकी : क्योंकि मैं सिर्फ चन्द्रमा जानता हूं।

चन्दा : कौन-सी चन्द्रमा ?

विवेकी : मेरी वही चन्द्रमा।

चन्दा : कौन वही चन्द्रमा ?

विवेकी : वही···वही चन्द्रमा। जो सदा मेरे माथे पर उगी रही है। जिसके कारण सदा मेरे सामने एक प्रकाश फैला रहा। मेरे किनारे कई बार धीरे से घोर अंधकार आया था, पर मेरी उसी चन्द्रमा ने मुझे बचाया था।

चन्दा : चन्द्रमा तो स्वयं एक दिन डूब जाती है, तुम किस चन्द्रमा की बात कर रहे हो ?

विवेकी : अपनी चन्द्रमा की। जो मेरे आकाश में है।

चन्दा : एक चन्द्रमा शुक्ल पक्ष की होती है, दूसरी कृष्ण पक्ष की।

विवेकी : हां-हां, मेरी वह सम्पूर्ण चन्द्रमा, शुक्लपक्षीय, कृष्णपक्षीय, वह कलंकमयी। मेरी चन्द्रमा।

चन्दा : सुनो-सुनो। तुम यह सब क्या कह रहे हो ? लगता है तुम्हारा माथा अब तक उसी तरह गर्म है। रुको, मैं तुम्हारे पीने के लिए पानी लाती हूं।

(विवेकी सहसा बढ़कर चन्द्रमा के पास चला आता है।)

विवेकी : हां-हां, मेरा वह माथा तब से उसी तरह जल रहा है। मुझे तुम्हारे ही हाथ का वह पानी चाहिए।

चन्दा : (विवेकी को देखती ही रह जाती है।)

विवेकी : इस मस्तक पर मेरी वह चन्द्रमा सदा उगी थी, पर न जाने क्यों मैं सदा प्यासा था।

चन्दा : मैंने ही तो तुम्हें वह श्राप दिया था। निष्कलंक को वह निर्मम श्राप देने वाली मैं···।

विवेकी : विश्वास करो चन्द्रमा। वह श्राप नहीं था, वह तो वास्तव में मेरी गति थी।

चन्दा : मेरी गति।

विवेकी : भूल जाओ उस छोटी-सी बात को चन्दमा। जीवन

की ओर देखो—वह कितना बड़ा है, कितना सुन्दर !

चन्दा : भूल जाऊं !

(हंस पड़ती है—करुण हंसी)

विवेकी : और यह जीवन भी कितना बड़ा सत्य है। और इससे भी बड़ा जो एक सत्य है वही मुझे यहां खींच कर ले आया है चन्द्रमा। नहीं तो फिर मैं यहां क्यों आता ? यही तो वह पानी है—सागर है, जिसमें वह सब घुलमिल कर सारा कितना मधुर हो गया है।

चन्दा : नहीं-नहीं। मुझे तुमसे यह दया नहीं चाहिए··· नहीं चाहिए।

विवेकी : सुनो···सुनो चन्द्रमा !

(चन्दा भीतर चली जाती है। विवेकी उसी तरह खड़ा रह जाता है।)

विवेकी : (पुकार कर) चन्द्रमा, मैं अन्दर आ जाऊं ?

(चन्दा भीतर से एक हाथ में छोटा-सा कवर लगा गोल टेबुल और एक हाथ में एक गिलास जल ले आती है। कुर्सी के सामने टेबुल रखकर उस पर गिलास रखती है।)

चन्दा : बैठो।

(विवेकी कुर्सी पर बैठता है, चंदा भीतर जाती है। विवेकी गिलास का सारा जल एक सांस में पी जाता है। उसी समय भीतर से चंदा आती है—हाथ में मिठाई भरी प्लेट लिए हुए।)

चन्दा : अरे-रे-रे ! खाली पेट पानी पी लिया ?

विवेकी : खाली पेट नहीं, खाली आत्मा !

(अकेला ही हंसने लगता है।)

विवेकी : लगा कि आज मैंने पहली बार पानी पिया है।

चन्दा : बम्बई में तो सुना है, चारों ओर पानी ही पानी है।

विवेकी : नहीं-नहीं, बम्बई में कहां पानी है—वहां तो जल है जल। समुद्रजल। यानी जल !

चन्दा : ओ हो ! किस तरह से बातें बनाने लगे तुम !

विवेकी : इसीलिए, ताकि अब तुम मुझे डांटा करो।

(चंदा भीतर से गिलास में जल ले आती है।)

विवेकी : तुम्हें क्या पता मुझे अब वह संगीत कितना प्रीतिकर लगने लगा है। मैं उसके लिए तुम्हें पहले डांटा करता था न, अब तुम मुझे डांटा करना।

चन्दा : अच्छा-अच्छा मिठाई तो खाओ। माफ करना, मेरे यहां चाय वगैरह नहीं बनती। यह मिठाई भी यहां संयोग से ही आ गयी थी। वह कार्तिक जो अपने यहां छोटा रसोइया था न, अब वह द्वारिकाधीश मंदिर के पुजारी का रसोइया है, उसी के हाथ की बनी यह मिठाई है।

(विवेकी जलपान करके, कोट-टाई उतारते हुए)

विवेकी : कहां मैं यह सोचकर यहां आया था कि मथुरा में माता-पिता जी दोनों के दर्शन करूंगा। सबके चरण छुऊंगा। यह देखो मैं उन लोगों के लिए क्या-क्या ले आया हूं।

(अटैची खोलकर सामान दिखाने लगता है।)

विवेकी : देखो, मां के लिए यह शाल। यह तूस की साड़ी। पिताजी के लिए यह धोती। यह कोट···।

(वह सारा सामान अंक में लिए हुए दीवार पर लगे उन चित्रों को देखकर रो पड़ता है।)

चन्दा : इतने बड़े आदमी होकर तुम भी उन बीती बात पर रोते हो ?

विवेकी : मैं रोऊं भी नहीं ?

(अंक का सामान तखत पर रख देता है।)

विवेकी : मुझे यह नहीं पता था कि मेरे अपराध का इतना भयानक दण्ड होगा।

चन्दा : कैसा अपराध ?

विवेकी : उसे बताना भी होगा क्या ?

चन्दा : काल के व्यवधान से शायद आपको अपने कर्त्तव्य करने का आनन्द नहीं मिला। (रुककर) पर उस कर्त्तव्य में आनन्द की जो छलना है न, वह दुख का ही नामान्तर है। उसे बुद्धि के आग्रह से वैसा मानना पड़ता है, नहीं तो वह सरासर बंधन है। वे लोग भाग्यवान हैं, जो इसे तोड़कर मुक्ति पा लेते हैं।

विवेकी : कहती जाओ···कहती जाओ इसी तरह से। सच, मुझ पर दया मत करो तुम।

चन्दा : मैं क्यों कहूं ?

विवेकी : फिर कौन कहेगा ? सारी करुणा, सारा दुख तो अकेले तुमने भोगा है। मैंने तो इस घर से सिर्फ सुख-सुविधा ली थी···सिर्फ सुख···।

चन्दा : पर वह एक बात कह कर मैंने उन सारे सुखों का गला तभी घोंट दिया था। तुम तभी से मुक्त थे।

विवेकी : चन्द्रमा !

चन्दा : तुम अब इस घर के अतिथि हो विवेकी।

विवेकी : नहीं, मुझे अतिथि मत कहो, मैं इसी घर का वही विवेकी हूं। तुमसे जुड़ा हुआ—एक संग आत्मसंग।

तुम कहीं भी, किसी स्तर से भी अकेली नहीं—मैं सदा साथ हूं तुम्हारे। तुम्हारे सब में मेरा साथ—मेरा जीवन !

चन्दा : छोड़ो इन बातों को।

(दोनों कुछ क्षणों तक चुप रह जाते हैं। चंदा की आंखें दूर शून्य में गड़ी हैं। विवेकी अपलक चन्दा को देख रहा है।)

विवेकी : चन्द्रमा !

चन्दा : (चुप है)

विवेकी : सुनो चन्द्रमा ! चन्द्रमा ! (अटैची में से निकालता है।) यह देखो···मैं तुम्हारे लिए यह ले आया हूं। यह बनारसी साड़ी। यह जड़ाऊ हार। ये चूड़ियां। ये कर्णफूल। लो···लो इसे।

(चंदा लेकर उसे देखती है, फिर सबको वहीं तखत पर रख देती है।)

विवेकी : अच्छा है न ?

चन्दा : बहुत अच्छा।

विवेकी : (हार उठाकर) बम्बई भर में सबसे उम्दा हार यही था, ढाई हजार रुपये का है यह। लाओ मैं तुम्हारे गले में पहना दूं।

(चंदा मूर्तिवत् खड़ी है। विवेकी उसके गले में हार पहनाता है।)

विवेकी : ओह ! कितना सुन्दर लग रहा है ! लाओ कान का आभूषण भी पहना दूं। (पहनाता है) हां, अब देखूं तो।

चन्दा : नहीं-नहीं। अभी तो अधूरा है। लाओ झटपट बनारसी साड़ी भी पहन लूं। तुरन्त···झटपट।

(तेजी से वह साड़ी की तह खोल देती है। फर्श पर साड़ी फैल गयी है।)

विवेकी : रुको। इसकी इतनी जल्दी क्या है ? रुको तो··· सुनो।

(फर्श पर फैली हुई साड़ी को सम्हालता है। जिसका एक छोर चंदा के हाथ में है।)

चन्दा : नहीं, छोड़ो। छोड़ो। बहुत अच्छी है यह साड़ी। मैं इसे अभी पहनूंगी। छोड़ दो। मेरे पास समय नहीं है। छोड़ दो···छोड़ दो इसे। छोड़ दो···।

(यह कहती हुई चंदा तेजी से घूमती हुई साड़ी को अपने ऊपर लपेट लेती है। जैसे साड़ी की तहों में कोई गुड़िया नाच उठे। उसका एक सिरा अब भी विवेकी के हाथ में है।)

पर्दा

दूसरा अंक

(पहले अंक से चौथे दिन, वही स्थान, वही दृश्य। सिर्फ अन्तर अब इतना है कि दायीं ओर की कुर्सी बायीं ओर रखी हुई है, और शीतलपाटी दायीं ओर बिछी है।
दोपहर का समय बीत गया है। पर्दा उठने पर कमरा सूना है। निर्मल बहुत अच्छे कपड़ों में बाहर से आती है। बहुत खुश है वह। उसके हाथ में तानपूरा है।)

निर्मल : (पुकारती है) मोनादी। मोनादी !
(भीतर से चन्दा का प्रवेश)

निर्मल : दीदी, आज तुम्हारा जन्मदिन है न ?

चन्दा : जन्मदिन ! ओह, मुझे तो पता ही नहीं था।

निर्मल : तुम्हें भेंट के लिए यह मैं तानपूरा ले आयी हूं। लो···।

चन्दा : (लेकर) तानपूरा ! पर आज मेरे लिए यह तानपूरा क्यों ? मेरे लिए कोई एक सेमल का पुष्प ले आतीं।

निर्मल : दीदी, आज तुम इस तानपूरे पर एक गीत गा दो।

चन्दा : कैसा गीत ?

निर्मल : वही गीत···"भालोबासि भालोबासी—एइ सुरे काछे दूर जले स्थले बाजाय बांशी।"

चन्दा : ओ हो ! आज तुम बहुत प्रसन्न हो !

निर्मल : हां दीदी, बहुत प्रसन्न, कल सुबह मैं आगरे जा रही हूं और आज मैं तुम्हें विदा देने आयी हूं।

चन्दा : अरे ! कैसी विदा ?

निर्मल : विवेकी बाबू कहां हैं ?

चन्दा : बम्बई के लिए एक 'ट्रंककाल' करने गये हैं। जब से यहां आए हैं, तब से रोजाना दो बार 'ट्रंककाल' करते हैं। बड़े आदमी हैं न।

निर्मल : हां-हां, वह बड़े आदमी तो हैं ही। पर दीदी, वह सच बड़े आदमी हैं। सुनो बता दूं दीदी! एक बहुत बड़ी खुशी की बात ? बता दूं ? मिठाई खिलाओगी न ?

चन्दा : अरे, बताओ न। घी-शक्कर-मिठाई से तेरा मुंह भर दूंगी।

निर्मल : सच ?

चन्दा : हां हां सच ?

निर्मल : तो सुनो, विवेकी बाबू तुमसे शादी करेंगे।

चन्दा : बस, यही बात ?

निर्मल : अरे ! तुम्हें पता था क्या ?

चन्दा : हूं, पता था।

निर्मल : तुमसे बताया था क्या ?

चन्दा : हां, मुझे इसका पता था।

निर्मल : दीदी, विवेकी बाबू कितने अच्छे आदमी हैं ! मेरी मोनादी ! मेरी सौभाग्यवती ! दीदी, बस आज इस खुशी में वही एक गीत गा दो। गा दो मेरी बहुत अच्छी दीदी ! मेरी प्राणसखी !

चन्दा : अच्छा, मैं तुम्हारी बात नहीं टालूंगी। तुम मुझसे

विदा हो रही हो न। तुम्हें एक दूसरा बहुत अच्छा गाना सुनाती हूं। पर गाकर नहीं, ऐसे ताकि यह तानपूरा भी सुने।

(चंदा तानपूरा तखत पर रख देती है और कहने लगती है।)

भालोबासार मूल्य आमाय दु-हात भरे
यतइ देबे बेशी करे,
ततई आमार अन्तरे एइ गंभीर फांकि
आपनि धरा पड़बे ना कि ?
ताहार चेये ऋणेर राशि रिक्त करि
याइ ना निये शून्य तरी।
पाछे आमार आपन बोझा लाघव तरे।
चापाइ बोझा तोमार परे
पाछे आमार एकला प्राणेर क्षुब्ध डाके
रात्रे तोमाय जागिये राखे···।
सेइ भयेतेई मनेर कथा कइ ने खुले
भुलते यदि पार तबे
सेइ भालो गो थेयो भुले।

निर्मल : दीदी ! मोनादी ! आज तुमने यह कैसा गीत गा डाला ?

चन्दा : रविठाकुर का यह तो बहुत सनातन गीत है निर्मल! मेरे प्रेम का मूल्य अपने दोनों हाथ भर जितना ही बेशी बढ़ाकर तुम मुझे दोगे, उतना ही क्या मेरे अन्तर की यह गंभीर प्रवंचना पकड़ाई नहीं देगी ? उससे तो अच्छा यह है कि ऋण की राशि को खाली कर सूनी नौका ही यहां से ले जायं। ताकि पीछे मैं अपना बोझा हल्का करने के लिए कहीं

तुम्हारे ऊपर बोझा न लाद दूं—पीछे कहीं मेरे अकेले प्राण की क्षुब्ध पुकार रात्रि में तुम्हें जगा न रखे। इसी भय से ही मन की बात खुलकर नहीं कहीं। भूल सको तो वही अच्छा, भूल जाना···।

निर्मल : पर मोनादी, विवेकी बाबू बहुत ही श्रेष्ठ पुरुष हैं।

चन्दा : हूं। सच कहती हो तुम।

निर्मल : तभी तो केवल वही तुम्हें सदा एक नये नाम से पुकारते हैं 'चन्द्रमा'। कितना प्रेमसूचक है यह—'चन्द्रमा'!

चन्दा : हूं। बहुत···। (रुककर) पर निर्मल ! वह विमान भार्गव भी तो मुझे बहुत प्यार करता है।

निर्मल : छीः छीः छीः दीदी ! किस गुंडे का नाम इस समय तुमने ले लिया ? कहां वह विवेकी बाबू कहां वह धूर्त विमान। जो तुम्हें अपने घर बिना ब्याहे रखना चाहता है।

चन्दा : वह सब सही है निर्मल। पर सबसे बड़ी बात यह है कि विमान को मेरी सख्त जरूरत है।

निर्मल : दीदी, तुम्हारा माथा ठीक है न ?

चन्दा : हां, बिल्कुल ठीक !

निर्मल : इसके माने मैं तुम्हारे सामने से अपना सिर पीटकर चली जाऊं।

चन्दा : निर्मल ! तुम अपने से मेरी तुलना करके यह बात कह रही हो। पर तुम भूल जाती हो, मेरे और तुम्हारे जीवन में बड़ा गहरा अन्तर है।

निर्मल : पर दीदी, तुममें तो इतना प्रकाश है कि गहरा अन्तर उसमें डूब जाय।

चन्दा : हां। पर जलने वाला स्वयं प्रकाश नहीं पाता निर्मल।

निर्मल : फिर क्या पाता है ?

चन्दा : सिर्फ आत्मदाह ।

निर्मल : जाओ, मैं तुमसे नहीं बोलूंगी ?

चन्दा : (प्रसन्न मुख) ओ हो ! तो यह क्यों नहीं कहतीं कि मुझसे कुट्टी करके इस बार आगरे जाना चाहती हो ? अच्छा जाओ भाई !

(हंसने लगती है ।)

निर्मल : दीदी ! इस समय विमान की बात कहकर तुम मुझसे हंसी कर रही थीं न ?

चन्दा : हां । बिल्कुल हंसी कर रही थी ।

निर्मल : सच दीदी ! आज से मुझे अपने ईश्वर पर और भी ज्यादा विश्वास हो गया। इस बार जब मैं आगरे से यहां आ रही थी न, तो उस रात मैंने यही सपना देखा था कि मेरी मोना दीदी का ब्याह हो रहा है। तुम अपने पति के संग मंडप में बैठी हो, और मैं शंख बजा रही हूं। गीत गा रही हूं ।

चन्दा : मैंने भी यही सपना देखा था निर्मल ।

निर्मल : देखो दीदी ! ईश्वर ने उसे किस तरह से पूरा किया ! क्या ही गजब का प्रबन्ध है उसका !

चन्दा : (हंस पड़ती है) तुम कितनी अच्छी हो निर्मल ! मेरी प्राणसखी···सौभाग्यवती !

निर्मल : दीदी ! ब्याह कहां सम्पन्न होगा ? यहां ही या बम्बई ?

चन्दा : बम्बई । वहां पहुंचते ही तुम्हें पत्र लिखूंगी । अपने ब्याह में केवल मैं तुम्हीं को बुलाऊंगी । तुम वहां अपने पति के संग आना ।

निर्मल : जरूर···निश्चय ही ।···विवेकी बाबू से मेरी सारी

बातें हुई हैं । वह कहते थे कि इंसान का कई बार जन्म होता है । सबसे बड़ा जन्म उसका ब्याह के दिन होता है ।

चन्दा : मुझसे भी कहते थे कि तुम कितनी पवित्र हो चन्दमा । ऐसी पवित्र, जैसी की मां होती है । गंगा-जल होता है ।

निर्मल : वाह !

चन्दा : निर्मल ! तुमने मेरे लिए यह स्वप्न देखा था न, तभी यह पूरा हुआ है ।

निर्मल : और देखो दीदी, आज ही के दिन तुम्हारा जन्म-दिन भी है ।

चन्दा : हां, लग रहा है, आज मैं फिर से पैदा हुई हूं । मेरे बाबा हैं, मां है, तुम हो, वह विवेकी है । और विवेकी को मैंने कुछ नहीं कहा है । वह अबोध है, मैं नवजात । और मेरे चारों ओर शंख बज रहे हैं ।

(निर्मल की सुखद शुभ हंसी)

चन्दा : निर्मल ! आज मैं इसी क्षण पागल हो जाती तो कितना अच्छा था !

निर्मल : ओ हो, अभी से यह उन्माद !

चन्दा : हां, ताकि यह क्षण कभी बीते नहीं निर्मल । मैं इसी उन्माद में हंसती हुई अपनी उस चिता पर चढ़ जाऊं ।

निर्मल : दीदी ! यह क्या अनाप-सनाप बातें करने लगीं ।

चन्दा : सुहागिन का शुभ अंत चिता ही तो है—पति के हाथ जलायी हुई वह चन्दन-चिता ।

निर्मल : बस-बस दीदी, बस ।···अब मैं जाऊंगी ।

चन्दा : अरे ! आज ऐसे ही क्या मैं तुम्हें विदा दूंगी ?

रुको। जाना नहीं, हां !

(कहती हुई भीतर चली जाती है। क्षण-भर बाद वही बनारसी साड़ी लिए हुए वह आती है।)

चन्दा : लो डियर ! मेरी यह भेंट !

निर्मल : हाय यह बनारसी साड़ी ! यह मुझे क्यों भेंट में दे रही हो ?

चन्दा : ताकि तुम्हें मेरी यह वर्षगांठ—मेरा यह जन्म-दिन याद रहे। इसी की स्मृति में···!

निर्मल : कोई दूसरी चीज दे दो न, इतनी कीमती यह बनारसी साड़ी ! अब तो यह तुम्हारे पहनने के लिए है दीदी !

चन्दा : यही साड़ी पहन कर कल सुबह तुम आगरे जाना निर्मल ! मुझे तब लगेगा—मैं ही यह साड़ी पहन कर अपने पति के संग जा रही हूं।

(निर्मल उस साड़ी को देख रही है।)

निर्मल : इस वक्त मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं अपनी बेटी को विदा कर रही हूं।

(निर्मल झुककर चंदा के चरण छूने लगती है, चंदा उसे अपने अंक में भर लेती है।)

निर्मल : दीदी ! तुम बम्बई पहुंचते ही मुझे खत देना, हां !

चन्दा : जरूर ! मैं अपने विवेकी के संग बम्बई जाऊंगी। वहां पहुंचते ही तुम्हें खत दूंगी। तुम अपने पति के साथ मेरे घर आना। मेरी तब गृहस्थी देखना !

निर्मल : मेरी अच्छी दीदी ! भालोबासि भालोबासी—एइ सुरे काछे दूर जले स्थले बाजाय बांशी !

(निर्मल को चंदा दरवाजे पर विदा देती है। कमरे में लौटती है। तानपूरा उठाकर देखती है। उसके तारों पर

उंगली फेरती है और उसे ऐसा लगता है जैसे असंख्य तार चारों ओर बज उठे हों और वह कमरे भर में आश्चर्य-चकित देखने लगती है। फिर वह तानपूरा लिए भीतर भागती है। तभी बाहर से अजित दा का प्रवेश।)

अजित दा : मोनी···मोनी मां !

चन्दा : (प्रवेश करके) नमस्ते।

अजित दा : सब आनन्द तो ?

चन्दा : बैठिये।

अजित दा : (कुर्सी पर बैठते हुए) ओ हो हो ! कितना शुभ हुआ। यह विवेकी कितना सुन्दर मनुष्य है। चमोत्कार। सुनो मोनी ! हम तो उस समय घर पर था नहीं। विवेकी बाबू सीधे वहां स्टेशन से पहुंचा। हम तो था नहीं। हमारा नौकर ही उनसे मिला। उसने विवेकी से सब सही-सही कथा बोल दिया। ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है। हम असत्य कथन बोलने से बच गया और तुम अपने विवेकी को प्राप्त हो गयीं। कितना मंगल हुआ यह !

चन्दा : जी, यह सब आपका आशीर्वाद है !

अजित दा : एक बात नहीं समझा मोनी ! तुम इतने अच्छे विवेकी से भेंट क्यों नहीं करना चाह रही थीं ?

चन्दा : पता नहीं क्यों ?

अजित दा : और तुम उसका चिट्ठी पढ़कर उस माफिक बेहोश हो गयीं, मैं तो सच बहुत डर गया। अब तो बताओ न, क्या लिखा था उस चिट्ठी में ?

चन्दा : वही बस आने की बात !

अजित दा : ओ समझा अब ! तुम बहुत भावुक लड़की है न ! कहां है विवेकी बाबू ? मैं उसका दर्शन करने

आया था ! कहां है विवेकी बाबू !

चन्दा : पता नहीं !

अजित दा : खूब चमत्कार हुआ जे ऐसा माफिक विवेकी तुम्हें मिल गया । बहुत शौभाग्य ! सुना है कि तुम अब कल-परसों में विवेकी के संग बम्बई चली जाओगी ।

चन्दा : विवेकी बाबू इस समय यहां नहीं हैं । आप उन्हीं से मिलने आये हैं न !

अजित दा : क्यों ? तुमको इस समय कहीं जाना है क्या ?

चन्दा : जी नहीं, पर मुझे भीतर काम है !

अजित दा : अरे छोड़ो ये काम मोनी । अब तो बम्बई में नौकर-चाकर, बेयरा, कुक वगैरह होंगे । अब किस बात की चिंता !

चन्दा : (चुप है)

अजित दा : बम्बई में विवेकी का पता क्या है ?

चन्दा : जानी न !

अजित दा : माने वो किस फर्म का जनरल मैनेजर है ?

चन्दा : पता नहीं !

अजित दा : तो उसका तुम्हें कुछ पता नहीं ?

चन्दा : जी नहीं !

(तेजी से भीतर चली जाती है । अजित दा कुछ देर खामोश कुर्सी पर बैठे ही रह जाते हैं । फिर उठकर बायीं ओर दरवाजे के पास जाते हैं ।)

अजित दा : अच्छा मोनी मां ! एखुन आमी चौल्लाम ! किसी जिनिस का दरकार होवे तो हमको बोल देना हां । अच्छा नमोश्कार !

(जाने लगते हैं । उसी समय बाहर से विवेकी का प्रवेश)

अजित दा : ओ हो हो ! नमोश्कार विवेकी बाबू ! आपको ही तो मैं दर्शन करने आया था !

विवेकी : जी, आपकी तारीफ ?

अजित दा : अजित चक्रवर्ती, बत्तिस डेम्पियर नगर···।

विवेकी : ओ हो, तो आप ही हैं वह अजित चक्रवर्ती साहब, जिसने स्वर्गीय निखिलराय चौधरी की वह कोठी हड़प कर ली ! बेटी चंदाराय को जिसने···!

अजित दा : नहीं-नहीं, असत्य है यह विवेकी बाबू !

विवेकी : बेटी चंदाराय के नाम से पिता जी ने जो धन बैंक में छोड़ रखा था—उसका आपने जो खेल किया, क्या वह झूठ है ?

अजित दा : जी हां, यह सब कथा असत्य है । सुनिये विवेकी बाबू ! दिवगंत आत्मा के सामने मैं कभी झूठ नहीं बोल सकता ! निखिलराय ने तो अपने उस मकान का हमसे पक्का 'डीड' किया था । उसका सारा पेपर्स हमारे पास है । हम तो राय चौधरी साहब का अन्तरंग मित्र था । हम तो उन्हीं के प्रेम से हिन्दू से ब्रह्म समाजी हो गया ।

विवेकी : अच्छा, तशरीफ ले जाइये···नमस्ते !

अजित दा : मेरे घर में अब भी स्वर्गीय निखिलराय चौधरी का फोटो टंगा है और उनके दायें-बायें केशवचन्द्र सेन और देवेन्द्र नाथ टैगोर का फोटो लगा है !

विवेकी : ठीक है···नमस्ते ।

अजित दा : यहां से बम्बई जाने के पहले हमारे घर आप दोनों का 'डिनर' । कल, परसों जब आपको सुविधा हो···।

विवेकी : जी धन्यवाद ! अच्छा···नमस्ते !

अजित दा : नमस्कार ! **(जाते-जाते लौटकर)** आप यहां किस फर्म में जनरल मैनेजर हैं ?

विवेकी : मतलब !

अजित दा : मेरा बड़ा लड़का है—शुभ्रत चक्रवर्ती, एम० ए०, एल० एल-बी०। 'अनइम्पलायड' है वह। उसका कुछ…।

विवेकी : देखिये, मेरे पास इस वक्त फुरसत नहीं है ?

अजित दा : अच्छा-अच्छा, नमोस्कार !

(प्रस्थान। विवेकी कुर्सी पर बैठ जाता है और चन्द्रमा का नाम लेकर पुकारता है। सहसा अजित दा का पुनः प्रवेश।)

अजित दा : जी, जी, क्षमा कीजियेगा, बम्बई में आपका 'एडरेश' क्या है ?

(विवेकी घूरकर उन्हें देखता है। अजित दा का तेजी से प्रस्थान।)

विवेकी : नानसेन्स। **(कुछ क्षणों के बाद)** चन्द्रमा ! चन्द्रमा !

(भीतर से चंदा एक कप चाय लेकर आती है, विवेकी को देती है।)

विवेकी : बैठो !

(चन्दा तखत पर बैठ जाती है।)

विवेकी : **(चाय पीकर)** ओह ! कितनी अच्छी चाय है ! इन पिछले तीन दिनों में मुझे ऐसा लगा, जैसे तुम्हारे स्पर्श में कोई मंत्र हो। तुम्हारे हाथ का भोजन-चाय खा-पीकर ऐसा अनुभूत हुआ मानो ग्यारह वर्षों बाद मैंने पहली बार खाना खाया हो, पहली बार मैंने चाय पी हो !

चंदा : ओ हो ! तो आप यह चाहते हैं कि मैं आपको धन्यवाद दूं ! क्यों…?

विवेकी : नहीं, बिल्कुल नहीं ! **(रुककर)** मैं जब से यहां आया हूं—तुमसे एक बात कहना चाहता हूं। मैं हर क्षण उसे कहना चाहता हूं, पर उसके लिए मुझे कोई भाषा ही नहीं मिलती। प्लीज, तुम मेरी सहायता करो, ताकि उस बात को मैं तुमसे कह सकूं।

चन्दा : जो कुछ कोई कहना चाहता है, क्या वह उसे कभी कह पाता है ?

विवेकी : पर मैं उसे कहे बिना रह नहीं सकता।

चन्दा : फिर तो आपको कहना ही होगा !

विवेकी : सच ! जब से मैं यहां आया हूं, लगता है मैं अपने आपको पा गया।

चन्दा : ओ हो। बधाई।

विवेकी : चन्द्रमा मैं,!…तुमसे अपना ब्याह करूंगा चन्द्रमा !

(चंदा को अपलक देखता रह जाता है। वह जैसे प्रतिक्रिया-शून्य है।)

विवेकी : चन्द्रमा !

चन्दा : यह बात मुझे मालूम थी !

विवेकी : हां-हां ! निर्मल ने कही होगी तुमसे !

चन्दा : **(चुप है)**

विवेकी : तो बोलो ! मंजूर है न ?

चन्दा : तुम इतने बड़े जनरल मैनेजर हो न ! तभी तुम इतनी जल्दी इस बात का फैसला चाहते हो; क्योंकि तुम्हारे पास ज्यादा फुर्सत ही नहीं है !

विवेकी : नहीं चन्द्रमा ! मैं जनरल मैनेजर नहीं, मैं विवेकी हूं।

चन्दा : विवेकी तो तुम्हारा सिर्फ नाम है। हो तो तुम जनरल मैनेजर न ?

विवेकी : कैसे ?

चन्दा : तभी तो तुम 'डेबिट' और 'क्रेडिट' का इतना अच्छा हिसाब जानते हो।

विवेकी : यह सब क्या कह रही हो तुम ?

चन्दा : तीन दिनों में ही मुझ पर तुम्हारी इतनी असीम कृपा !

विवेकी : नहीं नहीं। तुम पर यह मेरी कृपा नहीं है। मुझे गलत मत समझो !

चन्दा : तो दया ही सही !

विवेकी : दया भी नहीं !

चन्दा : तो फिर क्या यह देना! पावना की रोकड़ बही है ?

विवेकी : नहीं-नहीं। यह मेरा देना नहीं। यह भी मेरा पावना ही है। मैंने इस घर में जितना पाया है, अपनी जिन्दगी और आज तक का विकास—यह पावना भी उसी में ही है !

चन्दा : फिर तुम स्वार्थी हो, क्या यह मैं कहूं ?

विवेकी : बिल्कुल। यह तुम जरूर कह सकती हो ! मैं स्वार्थी हूं !

चन्दा : नहीं ! तुम स्वार्थी नहीं ! तुम बहुत अच्छे आदमी हो ! सच, बहुत अच्छे आदमी—'एन आइडियल' !

विवेकी : चन्द्रमा !

चन्दा : आज ग्यारह वर्ष बाद सहसा बम्बई से इतने बड़े आदमी बनकर मेरे पास आये और यंत्र की तरह एक क्षण में तुम मुझे भी अपनी तरह वही बना लेना चाहते हो। इतनी अपार दया !

विवेकी : दया की स्थिति कहीं और होती है। मैं तुमसे अपने

विवाह की बात कह रहा हूं।

चन्दा : विवाह !···पर तुम ने मुझे माफ कहां किया जो मैं आज तुमसे सहसा ब्याह कर लूं !

विवेकी : कैसी माफी ?

चन्दा : कैसी माफी ! जैसे तुम भूल ही गये होगे वह।

विवेकी : क्या ?

चन्दा : तो आज भी वह भयानक बात तुम मेरे ही मुंह से निकलवाना चाहते हो न।···वह बात, जिसके कारण तुमने यह घर त्यागा, जिसके दुख में मेरे पिता निखिलराय चौधरी तड़प-तड़प कर मरे !

विवेकी : ओ हो। भूल भी जाओ उन बीती बातों को चन्द्रमा !

चन्दा : जो सफल है, वह बीती बातों को भूल सकता है।

विवेकी : इन फजूल की बातों को याद रखने से कोई फायदा नहीं।

चन्दा : फायदा और नुकसान, यह व्यापार की भाषा है।

विवेकी : व्यापार नहीं···।

चन्दा : व्यवहार ही सही !

विवेकी : ओ हो ! कितना सोचने लगी हो तुम !

चन्दा : जब आपको बम्बई में इसका पूरा-पूरा अनुभव हो गया कि क्या याद रखना चाहिए, क्या भूल जाना चाहिए, किसमें लाभ है, किसमें हानि है। क्या दुनिया है, क्या फर्ज है, क्या दया है, क्या धर्म है, क्या अच्छा है, तब एकाएक आपको मथुरा की याद आयी, पर इसके पहले आप कहां थे ? कहां थे आप, जब निखिलराय चौधरी ने विवेकी-विवेकी रटते अपना प्राण त्यागा था ? ठीक उसी तरह

जैसे आपने यह घर त्यागा था !

विवेकी : जीवन की व्यस्तता और काम की झंझटों से कुछ वर्ष पत्र न देना, क्या त्यागना हो गया ?

चन्दा : वाह रे तुम्हारे तर्क !

विवेकी : यह तर्क नहीं, यह मेरा अपराध है—इसे मैं स्वीकार करता हूं। मैं उन दिवंगत आत्माओं से इसके लिए क्षमा चाहता हूं।

चन्दा : और हमारा यह ब्याह उसी अपराध का प्रायश्चित्त स्वरूप है न ?

विवेकी : नहीं-नहीं-नहीं !

चन्दा : मैं उस देवता निखिलराय चौधरी का ब्याज सहित सारा मूल धन हड़प कर जाऊं, ताकि तुम उऋण हो जाओ।

विवेकी : चन्द्रमा !

चन्दा : पर तुम तो उसी क्षण उऋण हो गये जिस समय निखिलराय चौधरी ने तुम्हें अंक में लेकर बेटा कहा होगा। अलबत्ता ऋण तो मुझ पर है। पर इस ऋण को मैं अपने सीमंत की सुहागरेखा नहीं बनाऊंगी। इसे मैं भभूत की तरह अपने सिर-माथे लिए हुए जीना चाहूंगी।

विवेकी : (**जैसे चीख पड़ता है**) चन्द्रमा !

चन्दा : मुझे अब चन्द्रमा मत कहो तुम। मेरा नाम चन्दाराय चौधरी है। चंद्रमा की संज्ञा सुनकर मुझे घृणा होती है। सोचती हूं पुरानी बातों को याद दिलाने वाला आदमी कितना बुरा होता होगा।

विवेकी : बुरा, भला—तुम जो-जो चाहो मुझे कह सकती हो।

चन्दा : आखिर क्यों ? पहले तो तुम बात-बात पर डांटते

थे, मेरे नाच-गाने से खिलाफ होकर तुमने मुझे एक बार एक चपत भी मारी थी। पर आज ? आज मुझे इतनी क्षमा क्यों ?

विवेकी : क्षमा की ऐसी कोई बात नहीं चन्द्रमा। तुम मुझे गलत समझ रही हो। 'आई लाइक यू बेरी मच !'

चन्दा : आखिर क्यों ? कैसे ? कौन-सी अच्छाई मेरे पास अब शेष बची है ? मेरा पिछला इतिहास तुमने जाना, मेरी यहां क्या इज्जत है, इसे देख लो। और क्या बचा है मेरे संग ?

विवेकी : तुम ! सिर्फ तुम। 'यू ओनली।'

चन्दा : विवेकी बाबू ! मैं अपने चारों ओर इन हंसने वालों की घृणा सह सकती हूं, पर अपनी यह श्रद्धा सहने की ताकत मेरे पास नहीं है।

(चाय का बर्तन उठाकर तेजी से भीतर चली जाती है। विवेकी थका-सा वहीं कुर्सी पर बैठ जाता है।)

विवेकी : (**पुकारता है**) चन्द्रमा ! सुनो चन्द्रमा !

(चंदा आती है।)

चन्दा : चलो भोजन कर लो। बिल्कुल तैयार है।

विवेकी : भूख नहीं है।

चन्दा : ओ हो ! नाराज हो गये क्या ?

विवेकी : तुमसे नाराज होने का मेरा अधिकार ही क्या है ?

चन्दा : अधिकार न होता तो मैं ही तुम्हें क्यों इतना दुःख देती !···उठो ! (**हाथ पकड़ लेती है।**) उठो न, मुझसे माफी मंगाओगे क्या ?

विवेकी : नहीं, ऐसी बात नहीं !

चन्दा : यह नहीं-नहीं क्या ? इतने बड़े आदमी होकर वही

औरतों वाला स्वभाव ! उठते हो कि नहीं। उठो···।

(बरबस उसे खींचती हुई भीतर चली जाती है और उसके मुक्त हास से सारा वातावरण जैसे रंग उठता है। भीतर से अब तक चंदा की मुक्त हंसी सुनाई दे रही है। कुछ ही क्षणों बाद बाहर से विमान का प्रवेश—धोती और कुर्ते में। हाथ में दो पुष्पहार लिये हुए है। आज वह जैसे अपनी सीमा से बाहर है।)

विमान : (आते ही) चंदा ! ओरी मोरी प्यारी चंदा ! चंदा रे !

(कमरे में घूमता हुआ गा उठता है)

चंदा। देश पिया के जा।
चंदा !

(सहसा रुककर) नहीं, नहीं। गलत हो गयी लाइन!

(फिर गाता है) चंदा देश पिया के आ।

साजन हमरे रूठे हमसे
उन्हें मनाकर ला।
चंदा देश पिया के आ।

(पुकारता है) चंदा, ओरी मोरी प्यारी मोरी चंदा !
चंदा रे !

(भीतर से गुस्से में विवेकी का प्रवेश)

विवेकी : चुप रहो। तमीज़ से यहां बात करो !

विमान : तमीज़ ! (हंसता है) ओ हो। तुम्हीं है वह जो बम्बई से यहां अपना तशरीफ का टोकरा ले आया है ! तो सुन ले तू विमान का फैसला। मेरे जीते जी तुम मेरी चंदा को यहां से नहीं ले जा सकता। मैंने उस पर अपना जान की बाजी लगा रखी है, हां।

विवेकी : पागल ! निकल जाओ यहां से।

विमान : अमे, तू हमको ऐसा कहता है ! मैं कहता हूं तू यहां से सीधे निकल जा। तू कहां से आ गया, दाल-भात में मूसरचन्द !

विवेकी : (बढ़कर सामने से विमान का कुर्ता पकड़कर उसे धक्के देकर निकालना चाहता है) निकल जा यहां से।

(विमान गुस्से में उसके मुंह पर एक थप्पड़ मारता है, विवेकी लड़खड़ा जाता है और उसी कुर्सी पर अपने को सम्हाल लेता है।)

विमान : बदमाश ! तुम हमको नेहीं जानता था। हम मथुरा में बदमाशों का भी राजा बदमाश है और शरीफों में शहंशाहे शरीफ !

(भीतर से चंदा का प्रवेश)

विमान : हमने इसको सिर्फ एक झापड़ मारा है।

चन्दा : (आरक्त) क्या ? तुमने मारा है ?

विमान : हां, मारा है, मारा है मैंने !

चन्दा : तुमने विवेकी को मारा है ?

विमान : हां-हां मारा है !

चन्दा : तुमने मारा है ?

विमान : नहीं-नहीं, मैंने उसको मारा है।

चन्दा : तू हत्यारा है ! पशु है तू !

विमान : क्या कहा ? जबान खींच लूंगा हां !

चन्दा : और तू कर ही क्या सकता है ···? यहां से तू सीधे जाता है कि नहीं ?

विमान : मैंने उसको जरा-सा ही मारा, और तुमको इतना दर्द हो आया ! अच्छा-अच्छा, मैं इसे अब नहीं मारूंगा। सच, नहीं मारूंगा।

चन्दा : तुम यहां से जाओगे कि नहीं ? मैं पूछती हूं तुमसे ?

विमान : जाऊंगा क्यों नहीं ? तुम यहां से जाने के लिए कहती हो तो मैं जरूर जाऊंगा। आमी तोमई भालोबासी तो। (हंसता है) भालो बासी। आज तुम्हारा बर्थ डे है न। यह मैं आज तुम्हारे लिए पुष्पहार ले आया हूं। लो इसे लो न। (गुस्से में) लेती हो कि नहीं बत्तमीज कहीं की !

(चंदा पुष्पहार ले लेती है।)

विमान : तुम्हारी आज्ञा मानकर इस समय चला जा रहा हूं, हां।

(गुस्से से चला जाता है। विवेकी एक लम्बे क्षणों तक चंदा को अपलक देखता रह जाता है। चंदा शून्य में देख रही है।)

विवेकी : कौन था यह ? कौन है यह ?

चन्दा : विमान चन्द्र भार्गव, आइरन मर्चेन्ट, मथुरा।

विवेकी : पर यह है कौन ? यह क्यों यहां इस तरह आता है ?

चन्दा : आपने उसे देखा नहीं ? उसकी बातें नहीं सुनीं ?

विवेकी : हां-हां, वह सब सुनीं, पर अब तुमसे भी सुनना चाहता हूं।

चन्दा : जो कुछ उसने कहा है, वह सब सही है !

विवेकी : (खड़ा हो जाता है) तो यही तुम्हारे उस बच्चे का पिता था ?

चन्दा : तुम्हें यही प्रश्न मुझसे करना शेष रह गया था क्या ?

(विवेकी की आरक्त आंखें चन्दा पर टिकी हुई हैं।)

चन्दा : मुझे पता था तुमने मुझे माफ नहीं किया होगा।

तभी तुमने अन्त में मुझसे यह प्रश्न कर ही दिया।

विवेकी : पर तुम मुझे इस प्रश्न का उत्तर नहीं दोगी।

चन्दा : वैसे उत्तर देना कोई आवश्यक नहीं था। पर मैं तुम्हारे प्रश्न के अधिकार की इज्जत करती हूं, इसलिए उत्तर देना ही होगा।

विवेकी : धन्यवाद।

चन्दा : मेरे उस शिशु का पिता यह नहीं था।

विवेकी : फिर कौन था वह ?

चन्दा : शाबाश। अब तुम स्वाभाविक आदमी की तरह मुझसे बात करने लगे। अब मुझे सब सहज लग रहा है। (रुककर) सुनो, मेरे उस शिशु का पिता कौन था, यह मैं तुम्हें नहीं बता सकती। पर हां, जो मेरे शिशु का पिता था, वह मेरा प्रेमी था।

विवेकी : प्रेमी था ? फिर कहां है वह ?

चन्दा : इस प्रश्न का उत्तरदायी वही है। पर उसने जो कुछ भी मुझे दिया था, मुझे अब भी उस पर···।

विवेकी : (चीख पड़ता है) तू पागल है। बेहया है तू।

(चंदा हंस पड़ती है, और हंसती ही रह जाती है।)

विवेकी : बंद करो यह बेशर्म हंसी।

चन्दा : पावस ऋतु में काले बादल जब सूर्य को ढक लेते हैं तो क्या हम उसे रात कहते हैं ?

विवेकी : पर रात होती तो है। यह तो सत्य है !

चन्दा : नहीं, मेरा सत्य प्रभात है। मैं उस पर विश्वास करके यह सारी रात बिता दूंगी।

विवेकी : ओह ओ ! तुम इतनी कठोर हो सकती हो, मुझे इसका···।

चन्दा : पता नहीं था—यही न ? कोयले के उस नन्हे-से

कोमल टुकड़े को भी इसका पता नहीं था जो सहसा पर्वत की चट्टानों की असंख्य पर्तों में दबकर एक दिन न जाने क्या हो गया।

विवेकी : खैर ! यह जो आदमी यहां आया था—जिसका शुभ नाम विमान है—इससे तुम प्यार करती हो?

चन्दा : यह तो पता नहीं। पर आज पिछले कितने वर्षों से मैं यह देख रही हूं कि इसे मेरी बहुत आवश्यकता है।

विवेकी : आवश्यकता ! धर्म बड़ा है कि आवश्यकता ?

चन्दा : आवश्यकता।

विवेकी : प्रिया बड़ी है कि मां।

चन्दा : प्रिया।

विवेकी : तो तुम धर्म नहीं मानतीं ? तुम्हें अपनी इज्जत की कोई परवाह नहीं ? तुम ब्याह करके मातृत्व की कामना नहीं करतीं ?

चन्दा : नहीं-नहीं-नहीं। तुम्हारे इस धर्म, ब्याह, इज्जत और मातृत्व में कहीं वह प्रेम नहीं है। तुम्हारा धर्म नारी के लिए यह कहता है कि पुत्र के लिए स्त्री की आवश्यकता है। और तुम्हारा मंगल ब्याह यह कहता है कि स्त्री की सारी इज्जत उसके मां बनने में है। यह धर्म, यह ब्याह, यह इज्जत स्त्री-जाति के लिए अपमान है। उसे केवल धोखा देना है।

विवेकी : ठीक है, तो तुम्हें सिर्फ प्रेम चाहिये। वही प्रेम जिसने तुम्हें एक बार···। वही प्रेम अब दूसरी बार यह देगा, श्रीमान विमान जिसका नाम है। ठीक है। बधाई !

(तेजी से भीतर चला जाता है। भीतर से सूटकेस और अटैची लिए आता है। उसमें कपड़े वगैरह ठीक से रखने लगता है।)

विवेकी : **(सामान रखता हुआ अपने आपसे कहता जा रहा है)** तुम जिस प्रेम को सूर्य समझती हो, उसे मैं महज कुहासा समझता हूं जो औरत के दिल को एक बार बेतरह ढक लेता है और उधर प्रेम पुरुष की बुद्धि पर भी औरत के रूप-यौवन का मोह वही कुहासा बनकर छा जाता है। मैं सिर्फ ज़िन्दगी का सूर्य समझता हूं। कुहासा चाहे जितना भी सूर्य को ढकने की कोशिश क्यों न करे, वह असत्य का असत्य ही है।

(पुष्पहार के फूलों को एक-एक करके चंदा तोड़ने लगती है।)

विवेकी : पुष्पहार के इन कीमती फूलों को क्यों तोड़ रही हो ? इन्हें सम्हालकर करो, ताकि इनसे कुहासे के भीतर अपना यह इन्द्रधनुष रचा सको ! **(रुककर जैसे अपने काम में व्यस्त हो जाता है)** पर अब मैं कौन हूं यह सब कोरा उपदेश देने वाला ! मैं तो महज़ व्यवसायी हूं न। देना-पावना बराबर करने वाला। मुझे तो तुम्हारे प्रति सिर्फ मोह और दया है न। मैं क्या जानूं प्यार ! और मेरा यह मोह-दया भी तो क्षणिक है। एक मुंह देखा क्षण। ठीक है, सब क्षणिक हो सकता है, पर क्षण तो असत्य नहीं हो सकता। पर मैं कौन हूं यह सब कहने वाला !

(चंदा जैसे कुर्सी पर गिर जाती है।)

विवेकी : (अब अटैची में सामान ठीक से रखता हुआ) ठीक है। मनुष्य के जीवन में बहुत-सा समय ऐसा चला जाता है, जब वह अपने सम्बन्ध की गलतफहमियों में रहता है। पर एक दिन जब सहसा उसकी आंख खुल जाती है तो उसका अकेलापन उसी पर हंस पड़ता है। (विराम) तुम्हारे सामने इस अपात्र ने अपने ब्याह का प्रस्ताव रख कर तुम्हारा जो अपमान किया है, उसके लिए मैं नत शिर क्षमाप्रार्थी हूं। (रुमाल से अपना मुख सुखाता है) अब सोचता हूं मथुरा में न आता तो कितना अच्छा था! (कण्ठ भर आया है, आगे वह कुछ नहीं बोल पा रहा है। महज दीवार पर टंगे उन चित्रों को निहारता है।) काश मैं यहां न आया होता। सोचता हूं अगर कहीं ईश्वर है, तो वह कहां है? खैर! (चंदा के सामने आकर) सुनो चंदा-राय! मुझे माफ करना। विश्वास रखना, मैं तुम्हें दुःख देने नहीं आया था। अच्छा, नमस्ते।

(एक हाथ में सूटकेस, दूसरे में अटैची थामे वह तीर की भांति बाहर निकल जाता है। चंदा सिर उठाती है। और उसी दिशा में देखती रह जाती है। खड़ी होती है। रो पड़ती है। क्षण-भर बाद उसी कार्तिक की आवाज आती है।)

आवाज : दीदी मां!

(कार्तिक का प्रवेश। चंदा अपना मुंह छिपाये दूसरी दिशा में खड़ी है—निःशब्द, मूर्तिवत्)

कार्तिक : दीदी मां! तुम कल बम्बई जा रही हो? मुझे भी अपने साथ ले चलोगी न? रसोई का काम वहां और कौन करेगा दीदी!

चन्दा : हां रे कार्तिक, ले चलूंगी मैं तुझे बम्बई!

कार्तिक : दीदी!

चन्दा : हां-हां, बोल। अरे तू तो मेरा मुंह देखे जा रहा है। बोल न! यह अपने अंगोछे में क्या बांध कर लाया है रे?

कार्तिक : यह तुम्हारे लिए पुष्प ले आया हूं दीदी, आज तुम्हारा जन्मदिन है न दीदी मां!

चन्दा : हां, है तो!

(पुष्प ले लेती है।)

कार्तिक : विवेकी बाबू कहां हैं दीदी मां?

चन्दा : यहीं है।

कार्तिक : तुम यहां अभी अकेली क्यों खड़ी थीं दीदी?

चन्दा : सोच रही थी कि अब यहां से कल बम्बई जाना होगा!

कार्तिक : इसमें सोचना-विचारना क्या है दीदी! मैं सारा इन्तजाम कर लूंगा! कल सुबह किस गाड़ी से जाना होगा दीदी?

चन्दा : यह तो पता नहीं कार्तिक!

कार्तिक : हां-हां, सुबह मेल से चलेंगे दीदी। परसों बम्बई पहुंच जायेंगे। मैंने सब पता कर लिया है दीदी। किसी बात की तुम चिन्ता न करना हां।

चन्दा : हां कार्तिक!

कार्तिक : विवेकी बाबू कितने अच्छे आदमी हैं दीदी! हैं न?

(चंदा स्वीकृति में केवल अपना सिर हिलाती है।)

कार्तिक : दीदी, तुम्हारी शादी वहीं बम्बई पहुंच कर होगी न ?

चन्दा : हां ।

(पर चंदा अपने को सम्हाल नहीं पाती । सारे आंसू सहसा फूट पड़ते हैं । वह उसे छिपाती हुई भीतर भागती है ।)

कार्तिक : दीदी !···दीदी मां ! दीदी···!

(पर्दा)

□□